धर्मायण

अंक 142
वैशाख,
2081 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

गृहस्थ-आश्रम अंक

महावीर मन्दिर में अब रात्रि में भी निःशुल्क भोजन वितरण। पहले एक ही बार जरूरतमंद लोग भोजन कर पाते थे।

धर्मायण

Title Code–BIHHIN00719

आलेख-सूची

1. धन्यो गृहस्थाश्रम:	- सम्पादकीय	3
2. न लिङ्गं धर्मकारणम्	- डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य	6
3. गृहस्थाश्रम पर पाश्चात्त्य संस्कृति का दुष्प्रभाव	- डा. काशीनाथ मिश्र	9
4. गृहस्थ आश्रम में तप एवं ब्रह्मचर्य	- श्री राधा किशोर झा	14
5. अथर्ववेदीय गृहस्थाश्रम की भूमिका	- श्रीपाद दामोदर सातलवेकर	19
6. गृहस्थ-आश्रम पर दयानन्द सरस्वती के विचार	- डॉ. सरोज शुक्ला	23
7. मनुस्मृति में गृहस्थाश्रम	-श्री संजय गोस्वामी	28
8. पुराणों में गार्हस्थ्य धर्म की महत्ता	- डॉ. शैलकुमारी मिश्र	32
9. गृहस्थ धर्म की आवश्यकता और कर्तव्य	- आचार्या कीर्ति शर्मा	35
10. गृहस्थ के कर्तव्य पर जैनमत में हेमचन्द्राचार्य के विचार	- श्री अरुण कुमार उपाध्याय	39
11. जैनमत में सागारधर्म की परिभाषा	- सागरधर्मामृत ग्रन्थ से संकलित	41
12. पीपल का एक पत्ता टूटने का दण्ड	- (लोककथा)	47
13. बौद्धमत में गृहस्थों के कर्तव्य	- सिगालोवाद सुत्त हिन्दी अनुवाद	50
14. 'मानस' में गृहस्थ-आश्रम और भगवत्-प्राप्ति	- डॉ. कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव	58
15. संस्कृत का महत्त्व : सनातन धर्म के सन्दर्भ में	- डॉ. रवीन्द्र कुमार भारतीय	62
16. 'मानस' में आदर्श गृहस्थ जीवन	- डॉ. राजेन्द्र राज	67
17. वीर माता सुमित्रा	- डॉ. नरेन्द्रकुमार मेहता	70
महावीर मन्दिर समाचार एवं अन्य स्थायी स्तम्भ		78

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 142

वैशाख, 2081 वि. सं.

24 अप्रैल-23 मई, 2024ई.

सम्पादक

भवनाथ झा

पत्राचार :

महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना- 800001, बिहार
फोन: 0612-2223798
मोबाइल: 9334468400

E–mail:

dharmayanhindi@gmail.com

Website:

www.mahavirmandirpatna.org.dharmayan.

Whatsapp:

9334468400

मूल्य : 45 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 141, चैत्र, 2081 वि.सं.

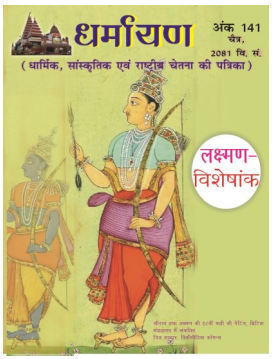

भवनाथ जी

आपको अनेक अनेक बधाई। लक्ष्मण जी पर आपने संकल्पित होकर सुन्दर अंक बनाया है। कई दृष्टिकोण से सामग्री जुटाई गई है। और भी, काम के क्षेत्र हैं। उनके मंदिर और उनके मत हैं। रामायण के दो ही मुख्य पात्र हैं... लक्ष्मण जी ने रामायण को दिशा दी है।

डॉ.श्रीकृष्ण जुगनू

पूर्व की तरह सुन्दर एवं अद्वितीय अङ्क। लक्ष्मण जी पर इस प्रकार की जानकारी को एक साथ करना श्रेष्ठ कार्य है। आ0 सम्पादक महोदय के विशेष परिश्रम सहित समस्त विद्वत लेखकजनों ने इस अङ्क की महत्ता को बढ़ाने में निश्चित ही अकल्पनीय योगदान दिया है। सभी को बधाई एवं हार्दिक शुभकामनाएँ।

राजीव कुमार मिश्र नन्हें

लक्ष्मण विशेषांक आदि से अंत तक पढ़ गया हूँ। रामकथा के पात्रों में लक्ष्मण का विवेचन गौण था। इस अंक में विद्वान् लेखकों के माध्यम से पता चला कि वे केवल रामानुज ही नहीं एक गम्भीर विचारक, स्वतंत्र चिन्तक तथा वीर योद्धा भी थे। लक्ष्मण तत्त्व वास्तव में गम्भीर विषय है और इस ओर हमारे शास्त्रकारों ने ध्यान भी दिया है। भुशुण्डि-रामायण में उनके सहस्रनाम का उल्लेख हुआ है। लक्ष्मण शेषनाग के अवतार भी माने जाते हैं तथा शेषतत्त्व से ओतप्रोत हैं। वे मगध के नाती हैं यह जानकर अति प्रसन्नता हुई, हम गौरवान्वित हुए हैं। कालिदास ने लिखा है तो अवश्य प्राचीन परम्परा उनके समय तक रह होगी। जैन-साहित्य में लक्ष्मण के हाथों रावण की मृत्यु दिखाई गयी है। सीधी-सी बात है कि रावण की मृत्यु का भेद जानने के लिए लंका में घुसना होगा। राम तो नगर में जा नहीं सकते क्योंकि वे वनवास के क्रम में हैं, लक्ष्मण गये और उन्होंने रावण की मृत्यु का रहस्य जान लिया। आदिवासियों की कथा भी यही बात कहती है, पर हर जगह लक्ष्मण एक योगी के रूप में दिखाए गये हैं। उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया है। ये कथाएँ लक्ष्मण के देवत्व को निखारती हैं। सभी लेखकों को बहुत बहुत धन्यवाद कि उन्होंने हमें एक अचिन्तित दृष्टिकोण से परिचय कराया।

रवीन्द्र सिन्हा

ए.पी. कालोनी, गया, बिहार।

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं.– +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

धर्मायण का अग्रिम **ज्येष्ठ मास का अंक मन तत्त्व पर प्रस्तावित है।** भारतीय साहित्य में मनस्तत्त्व पर दार्शनिक दृष्टि से गम्भीर विवेचन किया गया है। वह ग्यारहवाँ इन्द्रिय है तथा वैशेषिक दर्शन की दृष्टि से नौवाँ द्रव्य है। द्रव्य चूँकि भोतिक हैं तो क्या मनस्तत्त्व में भी भौतिकता है। उसका निर्माण भी परमाणुओं से हुआ है? वैदिक साहित्य के शिवसंकल्पसूत्र में मनस्तत्त्व पर पर्याप्त जानकारी दी गयी है। सृष्टि उत्पन्न होने के समय जिस कामतत्त्व की उत्पत्ति हुई उसे मन का निर्यास कहा गया है- मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। भारतीय दार्शनिक परम्परा में मनस्तत्त्व पर अंगरेजी मे तो अनेक दार्शनिकों ने काम किया है किन्तु वे हिन्दी भाषा के माध्यम से पाठकों के लिए उपलब्ध नहीं हैं। इसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु यह विशेषांक प्रस्तावित है।

धन्यो गृहस्थाश्रमः

सम्पादकीय

—भवनाथ झा

सनातन परम्परा में मानव जीवन को चार भागों में विभक्त किया गया है ये प्रत्येक भाग आश्रम के नाम से प्रसिद्ध हैं- ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास। विद्या के सन्दर्भ में इन्हीं चारों आश्रमों के लिए महाभाष्यकार पतञ्जलि ने आगमकाल, स्वाध्यायकाल, प्रवचन काल तथा व्यवहारकाल दिया है।

गृहस्थ-आश्रम की मर्यादा भारतीय परम्परा में बहुत अधिक है। इनमें से गृहस्थ चूँकि संसाधनों के उत्पादक होते हैं अतः इनकी महत्ता सर्वोपरि है। इसी आश्रम में मानवोपयोगी सभी सामग्रियाँ उत्पन्न की जाती है जिसका उपभोग सभी आश्रमों के लोग करते हैं अतः इसे श्रेष्ठ कहा गया है।

यहाँ विचारणीय है कि सनातन परम्परा की दृष्टि में आज हमारा समाज कहाँ जा रहा है? हम किन किन विन्दुओं पर अपनी परम्परा को छोड़कर भटक गये हैं? गार्हस्थ्य जीवन के किन किन मूल विषयों की हानि हो रही है? इन्हीं कुछ विषयों पर हम यहाँ विवेचन करेंगे।

इस सन्दर्भ में यहाँ हम कुछ पारिभाषिक शब्दों का विवेचन करेंगे, जिनकी अवधारणा आज जनमानस से गायब होती जा रही है:

पितृबान्धव-

पिता की और से रक्तसंबंधियों को पितृबान्धब कहते हैं-

पितु पितुः स्वसुः पुत्राः पितुर्मातुः स्वसुः सुताः।
पितुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया पितृबान्धवाः॥

अर्थात् पिता के पिता यानी पितामह की बहन की संतान, पिता की माता यानी पितामही की बहन की संतान, पिता के मामा की संतान पितृबान्धव कहलाते हैं।

मातृबान्धव

मातुर्मातुः स्वसुः पुत्राः मातुःपितुः स्वसुः सुताः।
मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबान्धवाः॥

अर्थात् माता की माता यानी मातामही की बहन की सन्तति, माता के पिता यानी मातामह की बहन की सन्तति, माता के मामा की सन्तति मातृबान्धव कहलाते हैं।

इस प्रकार, विवाह में पिता की ओर से सात पीढ़ी तक तथा माता की और से पाँच पीढ़ी तक की संततियों के बीच विवाह का निषेध किया गया है। इस अवधारणा को आज सबसे बड़ी हानि पहुँची है जिसके कारण रक्तसंबन्ध में विवाह होने लगे हैं। इसका दूसरा परिणाम निकल रहा है कि हमारा परिवार छोटा होता जा रहा है। आज स्थिति यह है कि पिता के मामा की सन्तान को लोग पहचानने तक से इंकार करने लगे हैं। परस्पर सामाजिक संबन्ध टूटते जा रहे हैं।

परिवार

परितो वृतः इति परिवारः। हमारे चारों ओर जो कुछ है चाहे वह स्थावर हो अथवा जंगम सारे पशु, पक्षी, वृक्ष, एक स्थान पर निवास करने वाले सभी जातियों तथा सम्प्रदायों के लोग हमारे परिवार के अन्तर्गत आ जाते हैं। इस प्रकार परिवार शब्द का सबसे बड़ा दायरा है। इस परिवार के लिए गार्हस्थ्य जीवन में हमारा कर्तव्य बनता है।

समाज

समानं जन्म यस्य स समजः। तस्य समूहः समाजः। जिनके समान जन्म हों अर्थात् परिवार के अन्तर्गत पशु, पक्षी, वृक्ष, नदी, पर्वत आदि को छोड़कर केवल मनुष्यों का समूह समाज कहलाता है। इसके अन्तर्गत सभी जाति, सम्प्रदाय तथा धर्म के लोग जाते हैं। इस समाज के प्रति हमारा कर्तव्य गृहस्थ का कर्तव्य है।

कुटुम्ब

मातृबान्धव, पितृबान्धव, मातृसपिण्ड, पितृसपिण्ड, सात पीढ़ी तक के दायाद आदि सभी कुटुम्ब कहलाते हैं।

परिजन

जिनका भोजन एक साथ बनता हो वे परिजन कहे जाते हैं। इसी अर्थ में गृह्य शब्द का भी व्यवहार हुआ है।

पत्रशेष-

भोजन के अन्त में एक कौर से भी कम अन्न छोड़ना पत्रशेष है। यह अन्न उद्भिज कीटों के लिए है। ये अन्न पृथ्वी पर अनेक क्षुद्र कीटों के आहार बनते हैं। उन्हें भी भोजन देना सनातन धर्म में निर्दिष्ट है। विष्णुपुराण के तृतीयांश के एकादश अध्याय में सम्पूर्ण रूप से गृहस्थ धर्म का स्मृति-सम्मत वर्णन किया गया है। इसमें निर्देश है कि

नाशेषं पुरुषोऽश्नीयादन्यत्र जगतीपते।
मध्वम्बुदधिसर्पिभ्यस्सक्तुभ्यश्च विवेकवान्॥86॥

अर्थात् मधु, जल, दही, घृत तथा सत्तू को छोड़कर विना शेष रखे भोजन नहीं करना चाहिए।

इसी बात को विष्णुस्मृति में भी कहा गया है-

न निःशेषकृत्स्यात्।[1]

यह उच्छिष्ट से एकदम भिन्न वस्तु है। उच्छिष्ट छोड़ना अनुचित है, क्योंकि **नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यात्** अर्थात् अपना जूठा किसी को नहीं देना चाहिए, ऐसा कहा गया है।

इस प्रकार अनेक ऐसे पारिभाषिक शब्द जो आज अपनी सार्थकता खोते जा रहे हैं, दिनके कारण आश्रम धर्म की हानि हो रही है। गृहस्थ-आश्रम का मुख्य आधार भरण-पोषण है। संसार के सभी प्राणियों में समान भाव रखते हुए यथासम्भव उनका भरण-पोषण तथा रक्षण करना गृहस्थों का प्रमुख धर्म है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन-काल तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। नौकरी, व्यवसाय अथवा अन्य जो भी आय के साधन हों उन्हें अपना कर गृहस्थ-आश्रम के धर्म का पालन करना चाहिए। नौकरी से सेवानिवृत्ति के पश्चात् घर में रहते हुए भी वानप्रस्थ धर्म का पालनीय है।

1. विष्णुस्मृति, 68.44, जूलियस जॉली (सं.), वाराणसी, 1962, पृ, 153.

यतिमार्ग

गृहस्थों को चाहिए कि वे ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ अथवा संन्यास आश्रम के लिए उचित आचार का अनुकरण न कर गृहस्थों के लिए वेद तथा स्मृति में उक्त आचार का पालन करे। धर्मशास्त्रियों ने गृहस्थ के लिए व्रत आदि धार्मिक कृत्यों में ऐसी व्यवस्था दी है ताकि उसका गार्हस्थ्य जीवन दुष्प्रभावित न हो। ऐसे विधानों में उसके स्वास्थ्य तथा परिवार का ध्यान रखा गया है। उदाहरणार्थ हेमाद्रि ने व्रतकाण्ड में सधवा स्त्रियों के व्रत के विधान के क्रम में कहा है-

गन्धालङ्कारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम् ।
उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमज्जनम्॥

अर्थात् चन्दन आदि सुगन्धित वस्तु, आभूषण, पान खाना, पुष्पमाला तथा चंदन आदि का लेप लगाने, दातून करने से तथा स्नान से सधवा स्त्रियों का व्रत भंग नहीं होता।

भविष्य पुराण भी कहता है-

अञ्जनं च सताम्बूलं कुङ्कुमं रक्तवाससी।
धारयेत् सोपवासापि अवैधव्यकरं यतः॥

आँखों में अंजन लगाना, पान खाना, कुंकुम धारण करना, लाल वस्त्र पहनना ये सब व्रत के समय महिलाओं के लिए विहित हैं, क्योंकि ये सुहाग के चिह्न हैं। लेकिन इसी स्थल पर विधवाओं के लिए यतिमार्ग का विधान है। कुमारी की अवस्था में यह छूट है कि वह सधवा स्त्रियों के आचार का भी पालन कर सकती है अथवा यतिमार्ग का भी पालन कर सकती है। इस यतिमार्ग को हमें गार्हस्थ्य जीवन में समझना चाहिए। यतिमार्ग में चूँकि पारिवारिक दायित्व नहीं रहता है अतः उनके लिए अपेक्षाकृत कठोर नियम हैं पर गार्हस्थ्य आश्रम में बहुत कुछ छूट दिए गये हैं। हम उनका पालन न कर संन्यास आश्रम के लिए विहित नियमों का पालन करते हैं तो आश्रमातिपात होगा।

इसी प्रकार, व्यावहारिक रूप से एकादशी व्रत में कभी कभी दो दिनों की एकादशी हो जाती है। इसका कारण है कि संन्यासियों के लिए सूर्योदय से पाँच घटी पूर्व ही दिन का आरम्भ हो जाता है, लेकिन गृहस्थों के लिए सूर्योदयकाल से दिन का आरम्भ होता है। अब दशमी विद्धा एकादशी तो दोनों के लिए त्याज्य है लेकिन यदि सूर्योदय से दो घटी पहले ही दशमी का मान समाप्त हो जाता है तो संन्यासियों के लिए तो उस दिन दशमी विद्धा एकादशी होगी, पर गृहस्थों के लिए दशमीविद्धा नहीं होगी। अतः संन्यासी अगले दिन व्रत करेंगे किन्तु गृहस्थ उसी दिन करेंगे।

ऐसी स्थिति में जब हम आधुनिक संचार माध्यमों के प्रभाव से श्रेष्ठ मानकर संन्यासियों के लिए विहित विधान की नकल करने लगते हैं तो वह भी आश्रमातिपात है। हमें इससे बचना चाहिए। हमें समझना चाहिए कि गृहस्थों के लिए जो विधान हैं वे भी श्रेष्ठ हैं।

इसी प्रकार, वस्त्र धारण करने में भी आज देखा जाता है कि गृहस्थ होकर लोग गेरुआ वस्त्र पहनकर पूजा आदि में भाग लेने में रुचि लेने लगे हैं। लोगों की मानसिकता हो गयी है कि यह श्रेष्ठ है, शुद्ध है, जबकि गृहस्थों के लिए लाल अथवा पीला रंग पूजा-पाठ आदि के लिए विहित है। गृहस्थों के लिए धर्मशास्त्र में वस्त्र के रंग का विधान है कि कौन कार्य किस रंग के वस्त्र को पहनकर करना चाहिए। इन विधानों को छोड़कर श्रेष्ठता प्रदर्शन के लिए विधानों का परित्याग करना भी अनुचित है। इस प्रकार गृहस्थ धर्म के अनेक विधान हैं। सबसे बड़ी बात है कि यह आश्रम किसी भी प्रकार से हीन नहीं है। इसी अवधारणा के साथ इस अंक का सम्पादन किया गया है।

***

न लिङ्गं धर्मकारणम्

डॉ. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य
व्याकरणाध्यापक, श्रीराम संस्कृत महाविद्यालय, सरौती, अरवल। पटना आवास- ज्योतिषभवन, शिवनगर कालोनी, मार्गसंख्या 10, बेऊर जेल के पीछे, पटना।

विशेष चिह्न को लिङ्ग कहते हैं। जैसे किसी के माथे पर जटा है तो हम समझ लेते हैं कि यह संन्यासी है। इस प्रकार संन्यासी को पहचानने का एक चिह्न है जटा। यही लिङ्ग कहलाता है। मनु ने कहा है कि धर्म का कराण यह लिङ्ग नहीं है। हम बाहर से भले जटा बढ़ा लें गेरुआ वस्त्र पहन लें इससे हम संन्यासी नहीं हो जायेंगे। इसके विपरीत यदि अन्य आश्रम में रहते हुए हम ऐसे चिह्नों को विकसित कर लेते हैं तो इसे दम्भ कहा गया है और इस दम्भ से हम लोक-वंचन का पाप कर बैठते हैं। लेखक ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि हमें गृहस्थ-आश्रम में रहते हुए ऐसे लिङ्गों— चिह्नों से बचना चाहिए। यदि हमारे अंदर समत्व का भाव है तो हम विना किसी विशेष आडम्बर के मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं। इनमें गृहस्थ यदि समत्व भाव से यथासम्भव उत्पादन, पालन तथा पोषण में लगा रहे तो उसे इसी आश्रम में परम पद की प्राप्ति हो जायेगी। सभी जीवों के प्रति दया, करुणा, दान, भर-पोषण उसका प्रमुख कर्तव्य है।

"एकोऽहं बहु स्याम", "स एकाकी न रमते" इस औपनिषदिक परब्रह्मरूप के संकल्प शिक्तिसंचार में अनादि सृष्टि परम्परा निरवच्छिन्न अद्यावधि अग्रसर प्रतिबद्ध है। स एकाकी न रमते यही श्रुतिवाक्य अनादि गृहस्थ-आश्रम परम्परा का प्रवर्तक है। एतावता सृष्टि का मूल कारण गार्हस्थ्य धर्म ही है।

यही गार्हस्थ्य धर्म ही प्रथम है, वह भी एक है। विश्वसौन्दर्य सौरभ के अस्तित्व का कारण गार्हस्थ्य धर्म ही है। अतः इसकी सर्वश्रेष्ठता व्यवहारत एवं सिद्धान्त से सर्वसिद्ध है।

मनुस्मृति में भी कहा गया है-

सर्वेषामेव चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् विभर्ति हि॥

सभी आश्रमों (ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी एवं संन्यासी) में वेद स्मृति विहित धर्मों का अनुष्ठान करने वाला गृहस्थ ही है। क्योंकि ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं संन्यास इन तीनों आश्रमों का गृहस्थ ही पालक, पोषक तथा रक्षक है।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थी यतिस्तथा।
एते गृहस्थप्रभवाश्चचत्वारः पृथगाश्रमाः॥

- मनु. 6.87.

इन चारों आश्रमों में रहकर सबको मुक्ति प्राप्ति का अधिकार है। यहाँ यह भी विचारणीय तथा विशेष ध्यातव्य है कि उक्त चारों आश्रमों में मुक्ति के लिए क्रमिक प्रतिबद्धता कारण नहीं है। किसी भी आश्रम में रहकर मुक्ति मिल सकती है। अपनी अर्हता तथा

"प्रत्येक आश्रम के लिए मुक्ति स्वतंत्र रूप से अग्रसर प्रतिबद्ध है। इसी आश्रम में मुक्ति मिलेगी उस आश्रम में मुक्ति नहीं मिलेगी यहाँ महाभ्रान्ति है तथा इस ज्ञान के तथाकथित प्रचारक भ्रान्त हैं। वस्तुतः मुक्ति का आन्तरिक कारण समत्वभाव है।"

योग्यता के अनुसार आश्रम अंगीकार आदरणीय है। इनमें पारस्परिक श्रेष्ठता निकृष्टता का भी कोई स्थान नहीं है। तत्त्वदर्शी गृहस्थ भी संन्यासी का दीक्षागुरु हो सकता है। यथा मनुस्मृति-

सर्वेऽपि क्रमशश्चैते यथाशास्त्रनिषेविताः।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम्॥

-मनुस्मृति 6.88

इन चारों आश्रमों में रहकर आश्रमानुसार शास्त्रविहित अनुष्ठान के सम्यक् पालन से मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

मनुस्मृति की टीका मन्वर्थमुक्तावली में **"एते सर्वे चत्वारोप्याश्रमाः शास्त्रानतिक्रमेणानुष्ठिताः अपि शब्दात् त्रयो द्वौ एकः अपि यथोक्तानुष्ठातारं विप्रं मोक्षलक्षणां गतिं प्रापयन्ति।"** के अनुसार आश्रमोक्त विहित अनुष्ठान मोक्ष का कारण है न कि मात्र आश्रम स्वीकृति अर्थात् पारम्परिक वेश धारणमात्र से मुक्ति संभव है। अतः प्रत्येक आश्रम के लिए मुक्ति स्वतंत्र रूप से अग्रसर प्रतिबद्ध है। इसी आश्रम में मुक्ति मिलेगी उस आश्रम में मुक्ति नहीं मिलेगी यहाँ महाभ्रान्ति है तथा इस ज्ञान के तथाकथित प्रचारक भ्रान्त हैं। वस्तुतः मुक्ति का आन्तरिक कारण समत्वभाव है। मनु ने भी कहा है-

दूषितोऽयं चरेद्धर्म यत्र तत्राश्रमे रतः।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम्॥

जिस किसी भी आश्रम में रहकर आश्रमविरुद्ध आचरण करने पर भी सभी प्राणियों में समता की दृष्टि रखनी चाहिए।

मन्वर्थमुक्तावली के अनुसार आश्रमविरुद्ध आचरण का अर्थ है- **आश्रमविहितलिङ्गरहितोऽपि** अर्थात् चिह्नविशेष के छिन्न-भिन्न होनेपर भी सब जीवों में (ब्रह्मभाव)=समत्वभाव के संचार से आन्तरिक निर्मलत्व की प्रतिबद्धता में धर्म का आचरण करे लिङ्ग, चिह्नविशेष धर्म का कारण नहीं है।

मानवीय दुर्बलता है कि शीघ्र लोकरंजक आकर्षक वेश से सर्वसामान्य से पृथक् सिद्ध धार्मिक बनने के लिए कहलाने के लिए तथा प्रतिष्ठित होने के लिए विशेष वेश का आश्रय लिया जा रहा है। गृहस्थ-आश्रम के व्यक्ति भी संन्यास आश्रम के लिए स्वीकृति वेश धारण कर स्वयं को गरिमामण्डित सिद्ध करने का प्रयास करते रहते हैं। मनु के शब्दों में यह चिह्न-परिवर्तन दूषित धर्म के अन्तर्गत आ जायेगा। यद्यपि इससे मोक्ष में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी क्योंकि समत्वभाव का विलोपन ही मोक्ष में बाधक एकमात्र तत्त्व है। जहाँ समत्व है वहाँ वस्त्र आदि गौण हो जाते हैं लेकिन यदि वेश-विपर्यय से किसी के मन में भ्रान्ति उत्पन्न होती है वह संन्यासी को गृहस्थ तथा गृहस्थ को संन्यासी समझ लेता है तो समत्वभाव रखने वाले व्यक्ति के लिए भी पापाचरण ही कहलाएगा, भ्रम-प्रसारण कहलाएगा।

इस भ्रम-प्रसारण को लोकवंचन कहा गया है, जिसके समान महापाप कुछ भी नहीं। यही दम्भ की शास्त्रीय परिभाषा है।

लोकवञ्चनाय विहितधर्मानुष्ठानं दम्भः।

अतः आश्रमोचित वेशधारण की परम्परा का हमें त्याग नहीं करना चाहिए, यह मनु का तात्पर्य है।

मन्वर्थमुक्तावली में व्याख्या की गयी है कि— **"न लिङ्गधारणमात्रं किन्तु विहितानुष्ठामेव धर्मकारणम्।"**

वेषविशेष ही धर्म का कारक संचारक नही होना चाहिए। मनुस्मृति 6.67 में कहा गया है-

फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम्।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति॥67॥

निर्मली (रीठा) के फल के योग से जल शुद्ध होता है यह सर्वविदित है लेकिन केवल नाम लेने से जल शुद्ध नहीं होगा।

इसी प्रकार केवल वेष धारण करने से आश्रम की गरिमा प्राप्त नहीं होगी।

अन्तर्यामी परमात्मा से क्या छिपाना? परमात्मा की दृष्टि में धर्मानुष्ठान में बाह्याभ्यन्तर की एकता को केन्द्रित कर धर्माचारण करें। बहुधा मन में अनन्त अशुभ आशंकाएँ उदित ही रहती हैं जिनका निवारण करते हुए क्षण-प्रतिक्षण शुभ की कामना करते हुए हमें धर्मपथ पर आगे बढ़ते रहना चाहिए।

आश्रमोचित कर्तव्य का पालन श्रेष्ठ है। जैसे गृहस्थ -आश्रम के लिए श्रुति-स्मृति में जो कर्म कहे गये हैं उन्ही का पालन करें, न कि वानप्रस्थ अथवा संन्यास के लिए विहित कर्म का पालन करना श्रेयस्कर समझें।

जैसे गृहस्थाश्रमियों के लिए एकादशी, चतुर्दशी आदि व्रतों में नक्तव्रत अर्थात् दिन भर निराहार रहकर सूर्यास्त के बाद एक बार भोजन करना विहित है। लेकिन यह नक्तव्रत वानप्रस्थियों तथा संन्यासों के लिए नहीं है, केवल गृही लोगों के लिए है। वानप्रस्थी तथा संन्यासियों के लिए अगले दिन सूर्योदय के बाद ही पारणा का अवसर होगा। अब यदि कोई गृहस्थ स्वाश्रम विहित नक्तव्रत के विधियों की अवहेलना कर सारी रात व्रत कर ले तो यह आश्रम-विधि का त्याग माना जाएगा। यदि हमारे धर्मशास्त्री गृहस्थ के लिए नक्तव्रत का विधान कर गये हैं तो कदापि उसे नीचा नहीं मानना चाहिए।

इस प्रकार सभी गृहस्थों से विनम्र निवेदन है कि वे गृहस्थाश्रम में रहकर अपने को दीन हीन क्षीण कदापि न समझें, नही लिंग-विशेष के धारण के लिए व्यग्र हों। अपने आश्रम का जो लिङ्ग शास्त्रानुकूल कहा गया है, वह आपके लिए श्रेष्ठ है।

एक ही ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक अथवा त्रिपुण्ड्र तिलक को मानव अपने स्थानानुसार कल्पित विभिन्न रूपों में धारण कर रहा है। जन-सामान्य दिग्भ्रमित है कि किसे श्रेष्ठ माना जाये। यही लिङ्गविशेष की विडम्बना है।

सन् 2022 ई. में जगन्नाथ पुरी में भागवत कथा वाचन का अनुपम अवसर मिला था प्रतिदिन सुबुद्ध श्रोता प्रश्न करते थे यथामति उत्तर भी दिया जाता था। एक दिन एक प्रबुद्ध इंजीनियर का प्रश्न आया ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक का यथार्थ स्वरूप क्या है? उत्तर दिया गया कि यह भगवच्छरण का प्रतीक है, स्वरूपांकन होना चाहिए भयावह नहीं बनाना चाहिए। यह प्रश्न इसलिए किया गया कि वहाँ एक युवा महन्त ललाट भर विस्तृत ऊर्ध्वपुण्ड्र करते थे। वह मेरे शिष्य भी था तो मैंने एक दिन उससे पूछा था कि इतना भयंकर तिलक क्यों करते हो? तो उसने उत्तर दिया था कि गुरुजी यही तो मेरा पूज्य बल है!

यह है लिङ्ग की विडम्बना।

मुक्ति की योग्यता स्वभावविशेष में होती है। वह वैदिक पंच सम्प्रदाय के किसी भी सम्प्रदाय का हो परन्तु उस सबमें साधन विभिन्नता के मध्य में मुक्त्यर्थ योग्यता मनुस्मृति 6.60. के अनुसार आदरणीय तथा अनुपालनीय होती है। इसका निर्धआरण किया गया है-

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूमानाममृतत्वाय कल्पते॥

इन्द्रिय निरोध से राग-द्वेष के परित्याग से प्राणिमात्र के कल्याण की कामना से मुक्ति के लिए साधक योग्य होता है। इन्द्रिय निरोध से गृहस्थाश्रम में बौद्धिक सदुपयोग तात्पर्य है।

***

गृहस्थाश्रम पर पाश्चात्त्य संस्कृति का दुष्प्रभाव

डॉ. काशीनाथ मिश्र
अंगरेजी भाषा एवं साहित्य के अध्येता,
आचार्य, सरस्वती विद्या मंदिर, मुंगेर।

भारतीय परम्परा में गृहस्थाश्रम की महिमा सर्वत्र गायी गयी है। यहाँ ब्रह्मचर्य बिताने के बाद न्यायतः धन उपार्जन कर, सन्तति-परम्परा को अविच्छिन्न रखते हुए जीवों के परिवार, समाज तथा कुटुम्ब के भरण-पोषण का आश्रम गृहस्थाश्रम है। इसमें विवाह प्रमुख है। भारत का विवाह-विधान दैवी सम्बन्ध माना जाता है, जिसमें एक-दूसरे के साथ जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध होता है। आधुनिक काल में इस अवधारणा में जो कमी आयी है उसका कारण है पाश्चात्त्य संस्कृति। पश्चिमी देशों में विवाह एक समझौता मात्र है। इसके कारण पश्चिमी देशों में बिखरते परिवार की भयावह स्थित हो गयी है। कुछ समय पहले अमेरिका में एक लाउंड्री का विज्ञापन निकला था कि "आप विवाह क्यों करें, जब हम आपके कोट का बटन लगाने की जिम्मेदारी ले लेते हैं!" इस प्रकार, पाश्चात्त्य संस्कृति का दुष्प्रभाव भारत पर पड़ रहा है। हम आज लिव इन रिलेशनशिप की ओर बढ़ रहे हैं। विडम्बना है कि पाश्चात्त्य जगत् जिस खामियाजा को भुगतकर पुनः सुदृढ परिवार की ओर अग्रसर हुआ है, वहीं हम भारतीय अपने सुदृढ़ परिवार की परम्परा को भुलाते जा रहे हैं।

भारतीय संस्कृति के प्रणेता मनीषियों द्वारा मानव जीवन के व्यवस्थित संस्कार के लिए संपूर्ण जीवन काल को जिन चार आश्रमों में विभाजित किया गया उसमें गृहस्थ-आश्रम को शेष तीनों- ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं सन्यास से श्रेष्ठ कहा जा सकता है, क्योंकि गृहस्थ-आश्रम ही बाकी तीनों आश्रमों को संरक्षण प्रदान करता है। अविभाज्य भारत के क्षेत्रों में चारों आश्रमों से संस्कारित जीवन का दर्शन कमोवेश प्राप्त होता है लेकिन, इस आश्रम व्यवस्था के अनुरूप पाश्चात्त्य देशों में सामाजिक जीवन क्या रही है? ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रमों के स्थान पर किन आश्रमों की अवधारणा रहीं है, इसका अध्ययन अभिरुचि पूर्ण हो सकता है। प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य सनातन धर्म आश्रम व्यवस्था के समानांतर पाश्चात्त्य संस्कृति का विश्लेषण तथा भारत पर उसके प्रभाव का प्रत्यक्षीकरण है।

भारत में शिव पार्वती एवं सीता राम के रुप में आदर्श गृहस्थ जीवन का उल्लेख है। इस तरह के आदर्श जीवन परंपरा के विपरीत आज पति-पत्नी में संबंध विच्छेद, लिव इन रिलेशन, विवाहेतर शारीरिक संबंध, व्यभिचार, वृद्धाश्रमों की बढ़ती परंपरा एवं धन संग्रह की प्रवृत्ति भारत में देखने एवं सुनने को मिलता है। कभी सीता, सावित्री एवं जनक, याज्ञवल्क्य की तपस्थली रही भारत में आधुनिकता के नाम पर नग्न नृत्य हो, पारिवारिक संबंधों की मर्यादा नष्ट हो तो क्या

हम भोगवादी पश्चिमी संस्कृति का अनुकरण कर रहे हैं? आज यह चिन्तनीय विषय है। इस तरह के खोखले आधुनिक जीवन-शैली को 'मानस' पटल पर लाकर चर्चा करने की आवश्यकता है। क्योंकि इसका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव भारत में यत्र-तत्र देखने को मिल रहा है। भाभी पीढ़ी इससे और भी ज्यादा प्रभावित होने वाला है।

भारत में आश्रम व्यवस्था का अनुपालन सामाजिक जीवन को अनुशासित ढंग से चलाने के लिए किया गया था। जिसका प्रमाण वेद के सूक्तों से प्राप्त होता है। यथा-

ब्रह्मचारी चरति वै विषद्
विषः सः देवानः भवत्येकमङ्गम्।

(ऋग्वेद 10.109.5)

ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे।

(ऋग्वेद द्वितीय मंडल)

येना यतिभ्यो मृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविय।

(ऋग्वेद अष्टम मंडल)

उपर्युक्त सूत्रों में ब्रह्मचारी गृहपति मुनि या यति जैसे पदों का उल्लेख प्राप्त होता है। यह वैदिक काल के आश्रम व्यवस्था को पुष्ट करता है। भारतीय आश्रम व्यवस्था का श्रेष्ठ परिचय महाकवि कालिदास से प्राप्त होता है जो रघुवंशियों का वर्णन करते हुए कहते हैं-

शैशवावस्था में विद्याभ्यास करते हैं अर्थात ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करते हैं यौवनावस्था में विषयों की अभिलाषा रखते हैं, अर्थात् गृहस्थ का आचरण करते हैं और वृद्धावस्था में मुनि के समान वृत्ति को धारण करते हैं तथा आयु के अन्तिम अवस्था में योग के माध्यम से शरीर को त्याग देते हैं अर्थात, संन्यास आश्रम के अनुकूल आचरण करते हैं यथा-

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

(महाकवि कालिदास, रघुवंश, 1.8)

अतः भारतीय आश्रम व्यवस्था में आयु के विभिन्न पड़ाव पर किस प्रकार का कर्म करना चाहिए, कैसी मनोवृत्ति रखनी चाहिए, क्या कर्तव्याकर्तव्य है तदनुरूप लोग आचरण करते हैं।

पाश्चात्त्य जीवन एक परिचय

पाश्चात्त्य शब्द, पश्चिमी यूरोप, उत्तरी अमेरिका के क्षेत्रों में विभिन्न देशों एवं राज्यों से संदर्भित है। पश्चिम के प्रति विकासशील होने की अवधारणा है। यह लोगों के विभिन्न समूहों के बीच सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक तालमेल से बना है न कि निश्चित सीमाओं और सदस्यों वाला कोई खास क्षेत्र। पश्चिमी सभ्यता का मूल मोंटे तौर पर ग्रीको-रोमन सभ्यता और पश्चिमी ईसाई धर्म की संयुक्त नींव से बना है। पश्चिम में बद्ध विचारों की परंपरा है। उधर की दृष्टि यह रही है कि हमने जितना जाना उतना ही सत्य है, बाकी सब असत्य है। जो भोग्य नहीं है नष्ट होने योग्य है। यही कारण है कि "सुकरात ने ग्रीक परंपरा से भिन्न विचार व्यक्त किया तो उसे जहर पीना पड़ा। अरस्तु को अपने देश से निष्कासित होकर एक निर्जन टापू में अपना अंतिम जीवन बिताना पड़ा। ईसा को यहूदी विचार परंपरा से भिन्न विचार व्यक्त करने के कारण सूली पर लटकाना पड़ा। गैलीलियो को ईसाई से भिन्न विचार व्यक्त करने के कारण जेल में सड़ना पड़ा, और कॉपरनिकस ने पादरियों के भय से अपने विचारों को अपने जीवन काल में प्रकाशित नहीं किया।"[1]

1. स्वामी संवित सुबोध गिरि, : भारतीय संस्कृति एवं पश्चिमी सभ्यता: पृ. 72 जागृति प्र.2013

पश्चिम का सामाजिक जीवन

भारतीय संस्कृति विचार की स्वतंत्रता, उदारता, और अचार में कठोरता जैसे अनुशासन को स्वीकारती है। विचारों की विविधता को प्रश्रय दिया पर आचार में मर्यादा बनी रहे। इसके लिए समाज को आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था द्वारा बांध दिया गया जिससे व्यक्तिगत जीवन एवं सामाजिक जीवन में उच्छृंखलता एवं मनमानापन का निर्माण न हो जाए। लेकिन, आज पश्चिम ने अध्यात्म को अस्वीकार करके भौतिकता पर अधिक बल देकर, जीवन को सिर्फ बहिर्मुखी बनाकर और अहर्निस कर्म की प्रेरणा देकर भौतिक सुखों का अम्बार खड़ा कर दिया है। पर सुविधाओं के अंबार के अंदर दुःखों का अंबार छिपा है। आज भीड़ में अपने आपको अकेला महसूस कर रहा है। वह न किसी का है ना अन्य उसके हैं आज उसके पास अर्थ और काम के अलावा और किसी श्रेष्ठ प्रेरणा के लिए कोई स्थान नहीं है। कम्युनिज्म अपने ही घर में ढह चुका है। अमेरिका के ढहने की स्थिति है। उसका राष्ट्र जीवन आतंक के बल पर खड़ा है। उसका आर्थिक जीवन, सारे विश्व के अधिक से अधिक प्राकृतिक संसाधनों का शोषण करके भी खोखला हो चुका है।

"उसका सामाजिक जीवन पारिवारिक जीवन समाप्त प्राय है। वहां के बच्चे स्नेह से रहित है। आज जितने ही प्रकार के अपराध हैं उसमें सबसे सिरमौर अमेरिका है, कमोबेश यही हाल सारे यूरोपीय देशों का है। आज वहां के बच्चे स्नेह से वंचित है। वहां बुढ़ापा सम्माननीय भोज के तुल्य है जो अधिकतर ओल्ड हाउस में रहता है। जवानी चंचल और अस्थिर है। वहां सारे रिश्ते समाप्त प्राय हो गए हैं। सिर्फ पति-पत्नी का रिश्ता बचा है, वह भी कच्चे धागे से बंधा है। कभी भी तलाक हो सकती है"

पश्चिम में 18 वर्ष का होते ही युवाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अलग रहे। लड़का हो या लड़की इस अवस्था में अभी शिक्षा पूर्ण भी नहीं हो पाती है, तब भी वहां 18 वर्ष से बड़े युवाओं का माता-पिता के साथ रहना अजीब माना जाता है। भारत में लड़की के कॉमार्य को इतना महत्त्व दिया जाता है कि बलात्कार, विवाह विच्छेद, विधवा हो जाने पर, उसका फिर विवाह होना मुश्किल होता है, चाहे इन सब में उसकी कोई गलती हो या नहीं। जबकि पश्चिम में लड़के एवं लड़कियां खुलेआम लिव इन रिलेशन में रहते हैं, डेटिंग करते हैं। पार्टनर पसंद ना आने पर वे बदल भी लेते हैं।

पश्चिम में धार्मिक आचरण

जिस प्रकार सनातन धर्म की हिंदू संस्कृति में आश्रम व्यवस्था एक आचार संहिता है जो जीवन के कालखंड को भी विभाजित करती है एवं विभिन्न आश्रमों में अन्योणाश्रय संबंध रखती है, तदनुरूप पाश्चात्त्य देशों में ऐसी कोई आचार संहिता नहीं है। वहां सभी धर्म कर्म चर्च से जुड़ा हुआ आज भी है। भारत में किसी भी वर्ण में जन्म लिए लोग भले पढ़ा हुआ हो या नहीं लेकिन धर्म के संबंध में अकाट्य तर्क प्रस्तुत कर देंगे।वहीं पाश्चात्त्य देशों में भले प्राचीन रोम की बात करें या ग्रेट ब्रिटेन की, धर्म का संबंध चर्च एवं चर्च के पोप से रहता है। पहले तो पोप का अपना निजी न्यायालय भी होता था। उन्हीं के बने हुए कानून भी होते थे। उन्हें मृत्युदंड तक देने का अधिकार होता था। ईसाई धर्म में पापों के प्रायश्चित के लिए चर्च क्षमा पत्र जारी करता था। धार्मिक आचरण के संबंध में सबसे निकृष्ट क्षमा पत्रों की बिक्री था ये पत्र स्वर्ग का टिकट समझकर बेचा जाता था और क्षमा पत्र लेकर कैसा भी

2. स्वामी संवित सुबोध गिरी: भारतीय संस्कृति एवं पश्चिमी सभ्यता, जागृति प्रकाशन पृ. 81

पाप हो व्यक्ति पाप मुक्त हो जाता था। यद्यपि कालान्तर में धर्म सुधार आन्दोलन एवं पुनर्जागरण से सामाजिक एवं धार्मिक विचारों में परिवर्तन आया है।

कॉन्वेंट की उत्पत्ति एवं विकास

कॉन्वेंट, धर्म संघ अथवा मठ, प्रमुख: ईसाई धर्म में पादरी भिक्षुओं अथवा ननों (धार्मिक महिला सेविकाएं) के काम में लिए जाने वाले भवन को कहते है। आधुनिक यूरोप के आरंभिक काल (1500 से 1800) में कॉन्वेंट बहुत सारे अविवाहित और विकलांग महिलाओं को नन के रूप में शामिल किया गया। "फ्रांस ने कॉन्वेंट को अविवाहित या विद्रोही महिलाओं और बच्चों के लिए जेल का विकल्प माना।

17वीं शताब्दी के दौरान 80,000 से भी अधिक महिलाएं कान्वेंट में रहती थी। कॉन्वेंट की संरचना में युवा महिलाओं को रखा जाता था और उसकी शादी की उम्र तक उसके कॉमार्य को सुरक्षित रख सके यह उद्देश्य होता था। वस्तुत: कॉन्वेंट जीवन के लिए वेश्याओं को निशाना बनाया गया एवं उसकी शादी में इस उम्मीद से मदद की, कि ये महिलाएं वेश्यावृत्ति छोड़कर सेवा करेंगे एवं मोक्ष प्राप्त करेंगे।"[3]

जिस यूरोप को हम खुले विचारों वाला मानते हैं वहां के पारिवारिक जीवन के ऐतिहासिक पहलू पर ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि आज से 500 वर्ष पूर्व वहां सामान्य व्यक्ति शादी भी नहीं कर सकता था क्योंकि बहुत बड़े दार्शनिक अरस्तू का मानना था कि यदि आम जनता शादी करेगी तो परिवार होगा और परिवार होगा तो संगठित समाज हो जाएगा और समाज शक्तिशाली बनेगा तो राज परिवार के लिए खतरा बन जाएगा। इसलिए आम जनता को शादी न करने दिया जाए। क्रांति दूध ब्लॉग के अनुसार, मुक्त शारीरिक संबंध से हुए संतान निराश्रित रहते थे। उन्हें एक सांप्रदायिक संस्था में रखा जाता था जिसे वे कॉन्वेंट की संज्ञा देते थे। उस संस्था के प्रमुखों को फादर, ब्रदर, सिस्टर नाम दिया गया। इस तरह निराश्रितों को परिवार का माहौल दिया गया।

भारत में कॉन्वेंट का भारतीयों पर व्यापक प्रभाव है। भारत में कॉन्वेंट जो क्रिश्चियन मिशनरी द्वारा संचालित है उसका लोगों पर श्रेष्ठ शिक्षण संस्थान के रूप में व्याप्त है। उसका मूल कारण प्रारंभ से ही अंग्रेजी भाषा का श्रेष्ठ भाषा के रूप में प्रसारित करना है लेकिन, वास्तविकता बिल्कुल भिन्न है। व्यापक स्तर पर प्रत्येक शहर में नोट्रेडेम अकादमी, कार्मेल स्कूल, सेंट जोसेफ, सेंट पॉल, मांउन्ट ऐ सी सी, सेंट टेरेसा जैसे विद्यालयों का उद्देश्य परोक्ष रूप में ईसाई धर्म एवं पश्चिमी संस्कृति की विशेषता को सिद्ध करना है न कि भारतीय संस्कृति की। इन विद्यालयों से जुड़े गरीब वनवासी एवं अन्य निराश्रित बच्चे-बच्चियों को चर्च से जोड़कर धर्म परिवर्तन किया जाता है। बाल्यावस्था में थोपा गया विचार अत्यंत प्रभावी एवं स्थाई होता है।

इस तरह के कार्य करते केरल में 6.14 नागालैंड में 87% मिजोरम में 86% मेघालय में 75% मणिपुर में 42% अरुणाचल में 30% गोवा में 25% ईसाइयों की जनसंख्या हुई है और प्रत्येक राज्य में ईसाइयों की संख्या क्रमिक रूप से बढ़ती जा रही है एनसीपीसीआर के सर्वे के अनुसार भारत में ईसाइयों की आबादी 11.1 फ़ीसदी है जबकि, धार्मिक अल्पसंख्यक स्कूल 71.96 फ़ीसदी इन्हीं के कान्वेंट या ईसाई मिशनरी स्कूल हैं।

भारत में पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव

यूरोप में "वृद्ध लोग जो कुछ दशक पहले अल्पसंख्यक थे, आज प्रजनन दर में कमी एवं बढ़ती

3. इवेंजेलिस्टी, सिल्विया जन. 2007, न्यूयॉर्क, आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस,पृ. 26 ISBN- 978019280435-8

जीवन की प्रत्याशा के कारण पांच में से एक यूरोपीय 65 वर्ष या उससे अधिक का है। यह दर 2050 तक 30 फीसदी के करीब होगी। आधुनिकीकरण के दौर में जब महिलाओं की सामाजिक क्षेत्र में भागीदारी बढ़ रही है, तो स्वाभाविक रूप से उनके लिए बच्चों को जन्म देना एवं उनकी देखभाल करने जैसी कार्यों में रुचि कम होगी। साथ ही वहां के महिलाओं एवं पुरुषों में अपने साथी के साथ संबंध बनाने, गर्भनिरोधक का उपयोग करने एवं स्वतंत्रतापूर्वक जीवन जीने का प्रचलन है। जो सामाजिक मर्यादाओं एवं बंधनों को दरकिनार करता है।"[4]

इससे भारत का भी तथाकथित आधुनिक वर्ग प्रभावित हो गया है। परिवार टूटने की संख्या बढती जा रही है। बड़े बुजुर्ग भले आज यहां डेटिंग का अर्थ न समझे लेकिन, यह शब्द युवकों के लिए अनजान नहीं है। भारत में फिल्मी हस्तियों से आरंभ होकर यह बड़े शहरों में फैलने लगा है। यहां पर अधिक उम्र में शादी करने का प्रचलन हो गया है। महिलाओं का रोजगार के क्षेत्र में भागीदारी एवं आर्थिक स्वतंत्रता, नौकरी पेशा में कार्य की विवशता आदि पढ़ें लिखे संभ्रांत वर्ग में जन्म दर प्रभावित कर रहा है। भारत में पाश्चात्त्य जीवन का सबसे बड़ा नकारात्मक प्रभाव पारिवारिक संबंधों को देखने को मिल रहा है। यहां भी परिवार का तात्पर्य खासकर शहरी जीवन में पति-पत्नी एवं अविवाहित बच्चे तक सीमित रह गया है। वृद्ध माता-पिता अकेला महसूस करते हैं। यहां भी वृद्धाश्रमों का प्रचलन बढ़ गया है। और इसकी ज्यादा आवश्यकता महसूस किया जा रहा है।

निष्कर्ष

पाश्चात्त्य जगत के व्यक्तिवाद उपभोक्तावाद और तकनीकी प्रगति पर जोर देनेवाली एवं तथाकथित आधुनिकता का भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा है। पश्चिम संस्कृति के परिणामस्वरूप सांस्कृतिक आदान-प्रदान की एक जटिल परस्पर क्रिया हुई है। जिससे जीवन शैली मूल्य और परंपराओं में बदलाव आया है। यह प्रभाव कपड़े, भोजन, आवास, शिक्षा एवं मनोरंजन सहित विभिन्न पहलुओं पर देखने को मिलता है। लगभग 200 वर्षों तक अंग्रेजों के शासन के अलावा वैश्विक आदान-प्रदान ने हमारी पारंपरिक अस्मिता को खतरे में लाकर खड़ा कर दिया है। आज विवाह दो परिवारोंके बीच रिश्ते केरूप में नहीं बल्कि दो व्यक्तियों अर्थात पति पत्नी के रिश्ते में बदल गया है। प्रेम-विवाह ने संयुक्त परिवार को जड़ से ही दिया है, निराश्रित वृद्ध का कष्टमय जीवन, भारत में पनपने लगा है।

पश्चिमी देशों में रह रहे भारतीयों एवं अन्य पूर्वी देशों के लोगों को संघर्षपूर्ण माहौल का सामना करना पड़ता है खासकर मतभेद वहां दिखता है जहां बच्चों की मूल संस्कृति अपेक्षाकृत रूढ़िवादी सामूहिकतावादी या अत्यधिक सम्मानजनक होती है। वहां पॉप मीडिया से लेकर सेक्स ऐड तक सब कुछ किशोर को बताता है कि कामुकता की स्वस्थ अभिव्यक्तियां न केवल ठीक है बल्कि वह एक संतुलित जीवन का हिस्सा है। जबकि, उसके घरेलू वातावरण में यह विषय गहराई से वर्जित है। लेकिन, वहां के आम जीवन में डेटिंग जैसी क्रियाओं से वे भी अनभिज्ञ नहीं है। वैश्वीकरण के दौर में आज दूरसंचार, इंटरनेट गूगल, फिल्म जगत, ने सभी के हाथों में मोबाइल के माध्यम से पूरी दुनिया की खबर को पहुंचा दिया है और लोग उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते हैं। आज आवश्यकता है कि इस तरह के सांस्कृतिक क्षरण से भारत को कैसे बचाएं।

***

4. के. गिल्लियां नालेज eeca.unfpa.org समाचार संस्था के सर्वेक्षण के अनुसार

गृहस्थ-आश्रम में तप एवं ब्रह्मचर्य

श्री राधा किशोर झा
विशेष सचिव, भारतीय प्रशासनिक सेवा, (अ.प्रा.) क्वांटम डीएनआर. एपार्टमेंट, फ्लैट सं. 305, 70 फीट बाइपास, विष्णुपुर, पकरी 35 फीट, बिहार डिजिटल वर्ल्ड के पास, द्वारकापुरी, पटना-800002

सामान्य रूप से लोग समझते हैं कि विवाह न करना तथा स्त्री-संपर्क से दूर रहना ब्रह्मचर्य का पालन करना है। साथ ही, विवाह होने के साथ ब्रह्मचर्य भंग हो जाने की स्थिति में उसे हीन मान लिया जाता है। धर्मसंबंधी कार्यों में व्यावहारिक रूप से जहाँ ब्रह्मचारी तथा संन्यासियों की श्रेष्ठता मानी जाती है, वहीं गृहस्थों तथा वानप्रस्थियों के लिए दृष्टि बदल जाती है। इतना ही नहीं, तपस्या का भी आश्रम सामान्य रूप से लोग संन्यास आश्रम को मानते हैं। तपस्वी शब्द का व्यवहार भी संन्यासी के पर्याय के रूप में होता है। लेकिन यदि हम शास्त्रों को देखें तो कोई व्यक्ति नियमों का पालन कर विवाह करने के बाद भी पत्नी-सम्पर्क करने के बाद भी ब्रह्मचर्य तथा तपस्या का पालन सकता है और ब्रह्मचारी तथा तपस्वी कहलाने का अधिकारी हो सकते है, वह ब्रह्मस्थ भी हो सकता है। गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचर्य, तप तथा ब्रह्मस्थ होने के नियम यहाँ शास्त्रानुसार प्रतिपादित किए गये है।

आश्रम धर्म का द्वितीय एवं महत्त्वपूर्ण चरण गृहस्थाश्रम है। यह शेष तीनों आश्रमों का धारक है[1] अतः अति महत्त्वपूर्ण है। मनुस्मृति[2] एवं रामायण[3] में गृहस्थाश्रम को चारों आश्रमों में श्रेष्ठ माना गया है। गौतम धर्मसूत्र में भी इस आश्रम को प्रधान आश्रम माना गया है—

ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद् गार्हस्थ्यस्य गार्हस्थ्यस्य।[4]

बौधायन धर्मसूत्र में भी एकाश्रमता पर ही जोड़ दिया गया है—

ऐकाश्रम्यं त्वाचार्या अप्रजननत्वादितरेषाम्।[5]

अर्थात् आचार्यो का कथन है कि केवल एक आश्रम ही है क्योंकि अन्य आश्रमों में पुत्रोत्पत्ति नहीं होती है।

सभी आचार्य एक ही आश्रम मानते हैं, क्योंकि वही अन्य आश्रमों का उपजीव्य है। अथवा इस गृहस्थाश्रम में अशक्त व्यक्तियों के लिए ही दूसरे आश्रम का विधान किया गया है।[6]

1 मनुस्मृति : 6.89, 3.78.
2 मनुस्मृति : 3.78- तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।
3 रामायण : 2.106.22. चतुर्णायामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्।
4. गौतम धर्मसूत्र : 1.3.35
5. बौधायन धर्मसूत्र : 2.6.11.29
6 मनुस्मृति : 3.79.

सद्-गृहस्थ ही अपने कर्तव्यों के द्वारा देव, पितर, ऋषि मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणियों को धारण करता है। अतः गृहस्थ धर्म सनातन धर्म का रीढ है।[7]

तैत्तिरीय उपनिषत् के शीक्षावल्ली के ग्यारहवें अनुवाक में आचार्य अपने अन्तेवासी को विद्याध्ययनोपरान्त उपदेश देते हैं कि **प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः** प्रजातन्तु को विच्छिन्न मत करो।[8] छन्दोग्य उपनिषत् में ऋषि उपदेश देते हैं—

आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान्विदधतात्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठाप्याहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते॥[9]

अर्थात् नियमानुसार गुरु के कर्तव्य कर्मो को समाप्त करता हुआ वेद का अध्ययन कर आचार्यकुल से समावर्तन कर कुटुम्ब में स्थित हो पवित्र स्थान में स्वाध्याय करता हुआ (पुत्र एवं शिष्य को) धार्मिक कर सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपने अन्तःकरण में स्थापित कर शास्त्र की आज्ञा से अन्यत्र प्राणियों की हिंसा न करता हुआ वह निश्चय ही आयु की समाप्ति पर्यन्त इस प्रकार बरतता हुआ (अन्त में) ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है और फिर नहीं लौटता, फिर नहीं लौटता।

इसमें पूरे जीवन की रूपरेखा या यात्रा का चित्र खिंचा गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम के समापन पश्चात् गृहस्थाश्रम प्रवेश का स्पष्ट संकेत हमें 'कुटुम्ब' शब्द से ध्वनित होता है। आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में लिखा है **"गुरुकुलान्निवृत्य न्यायतो दारानाहृत्य कुटुम्बे स्थित्वा गार्हस्थ्ये विहितकर्मणि तिष्ठन्नित्यर्थः।"** अर्थात् गुरुकुल से निवृत्त हो नियमपूर्वक स्त्री-परिग्रह कर कुटुम्ब में स्थित हो, अर्थात् गृहस्थाश्रम में विहित कर्म में तत्पर हो।

अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति के पश्चात् द्वितीय चरण में गृहस्थाश्रम सनातन धर्म में विहित है। इस गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों की झाँकी तैत्तिरीय उपनिषत् की शीक्षावल्ली के ग्यारहवें अनुवाक में दिया गया है जिसका वर्णन पूर्व अध्याय में किया गया है। संक्षेप में महाभारत अनुशासन पर्व के अन्तर्गत वर्णित गृहस्थाश्रम के धर्म का उल्लेख सुविधानुसार यहाँ किया जाता है, विस्तार से उपशीर्षक के अनुसार संगत स्थल पर आगे वर्णन किया जायेगा।

(क) अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः॥[10]

अहिंसा, सत्यवचन, सब प्राणियों पर दया करना, मन और इन्द्रियों पर काबू रखना तथा अपनी शक्ति के अनुसार दान, गृहस्थ-आश्रम का उत्तम धर्म है।

(ख) परदारेष्वसंसर्गो न्यासस्त्रीपरिरक्षणम्।
अदत्तादानविरमो मधुमांसस्य वर्जनम्॥
एष पञ्चविधो धर्मो बहुशाखः सुखोदयः।
देहिभिर्धर्मपरमैश्चर्तव्यो धर्मसम्भवः॥[11]

अर्थात् परायी स्त्री से दूर रहना, धरोहर और स्त्री की रक्षा करना, विना दिए किसी वस्तु को न लेना तथा मांस और मदिरा का त्याग करना— ये गृहस्थों के पाँच धर्म हैं, जो सुख को प्राप्त करानेवाले हैं। धर्म को श्रेष्ठ माननेवाले मनुष्य को चाहिए कि वे पुण्यप्रद धर्म का पालन करें।

7. मनुस्मृति : 3.80
8 तैत्तिरीय उपनिषत् : 11.1; ऋग्वेद : 2.28.5- "मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः" ॥
9. छान्दोग्य उपनिषत् : 8.15.1
10. महाभारत : अनुशासन पर्व : 141.25.
11. महाभारत : अनुशासन पर्व : 141.26-27.

गृहस्थ जीवन में तप

(क) जीविका हेतु वर्णानुसार गृहस्थ निःस्वार्थ होकर ईश्वरार्पण की भावना से जो भी स्वाभाविक कर्म/अन्य कर्म करता है वह मनुस्मृति, 11.235 के आलोक में तप है। भगवान् व्यास के अनुसार ये वर्णोचित यज्ञ हैं।[12]

(ख) गृहस्थाश्रम में रहते हुए जो गृहस्थ प्रतिदिन वेदादि (आध्यात्मिक) ग्रन्थों का अध्ययन करता है वह मनुस्मृति, 2.167 के आलोक में तप है।

(ग) सायणाचार्य के मत के आलोक में गृहस्थ के लिए सत्पात्र में न्यायोपार्जित धन का दान तप है।

(घ) माता, पिता एवं आचार्य की सेवा गृहस्थ के लिए तप है। स्त्री के लिए पातिव्रत्य व्रत का अनुष्ठान परम तप है।[13]

(ङ) गृहस्थ के लिए प्राणायाम तप है-

प्राणायामाः ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत् कृताः।
व्याहृति-प्रणवैर्युक्ताः विज्ञेयं परमं तपः॥[14]

(च) व्याहृति और प्रणव युक्त तीन प्राणायाम भी विधिपूर्वक करना ब्राह्मण का परम तप है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥[15]

जैसे धातुओं का मल तपाने से जल जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम के द्वारा प्राणों को रोकने से इन्द्रियों के सब दोष नाश हो जाते हैं।

(छ) मैत्रायणि उपनिषत् में आश्रमोचित कर्तव्यों के पालन को तप कहा गया है—

आश्रमेष्वेवावस्थितस्तपस्वी वा इति उच्यते।

अतः गृहस्थ-आश्रम के वर्णित कर्तव्यों का निर्वहण तप है।

(ज) तैत्तिरीय आरण्यक के आलोक में उपवास परम तप है।[16] इसकी पुष्टि महाभारत शान्तिपर्व से भी होती है-

तपो नानश्नात् परम्॥[17]

गृहस्थ जीवन में ब्रह्मचर्य

गृहस्थ निन्दित छह रात्रियों तथा अन्य आठ रात्रियों को छोड़कर पत्नी समागम करता है तो वह ब्रह्मचारी ही है।

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्तु तत्राश्रमे वसन्॥[18]

इसी प्रकार का वर्णन याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.69 में किया गया है। प्रश्नोपनिषत् 1.13 में गृहस्थ के लिए रात्रि में अपनी पत्नी के साथ समागम ब्रह्मचर्य ही माना गया है।

महाभारत शान्ति पर्व में कहा गया है—

भार्यां गच्छन् ब्रह्मचारी ऋतौ भवति वै द्विजः।
ऋतवादी भवेन्नित्यं ज्ञाननित्यश्च यो नरः॥[19]

जो द्विज केवल ऋतुकाल में ही पत्नी के साथ समागम करता, सदा सत्य बोलता और नित्य ज्ञान में स्थित रहता है, वह सदा ब्रह्मचारी है।

गौतम धर्मसूत्र के आलोक में पत्नी-समागम छोड़कर ब्रह्मचर्य के लिए जो भी नियम ब्रह्मचारी के हैं वे सभी नियम गृहस्थ के लिए भी अनुपालनीय है।[20]

12 महाभारत : शान्तिपर्व, 238.12. मनुस्मृति : 11.235. 13 मनुस्मृति : 2.228-29.
14 मनुस्मृति : 6.70. 15 मनुस्मृति : 6.71
16 तैत्तिरीय आरण्यक : 10.62.2.
17 तैत्तिरीय आरण्यक, 10.63.2. 10.79.2 तथा महाभारत शान्तिपर्व, 161.7,10.
18 मनुस्मृति : 3.50. 19. महाभारत : शांति पर्व, 221.11
20 गौतम धर्मसूत्र 1.3.9.- उत्तरेषां चैतद्विरोधि।

नारुन्तुदः स्यादार्त्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः।
ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत्॥[21]

दुःखी होने पर भी न तो दूसरे का मन दुःखावे और न दूसरे से द्रोह करने में मन या बुद्धि लगावे, जिससे किसी की दुःख हो ऐसी बुरी वाणी न बोले।

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥[22]

जो ब्रह्मचारी सुनकर, छूकर, देखकर, खाकर और सूंघकर न तो प्रसन्न होता है और न उदास होता है उसे जितेन्द्रिय कहते हैं।

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम्॥[23]

इन्द्रिय समूह को वश में करके तथा मन को रोककर और उपायों में शरीर को पीड़ा न देकर ब्रह्मचारी को अपने प्रयोजन की साधना करनी चाहिए। इन्द्रियों का संयम 'दम' है और मन का संयम 'शम'। अर्थात् ब्रह्मचारी को नित्य शम और दम का अभ्यास करना चाहिए।

गृहस्थ जीवन में ब्रह्मस्थ होना

छान्दोग्य उपनिषत् में वर्णित है कि ब्रह्मस्थ पुरुष अमृतत्त्व की प्राप्ति करता है- **ब्रह्म संस्थोऽमृतत्वमेति।**[24] ब्रह्मस्थ होने की विधि का विस्तृत विवरण गीता में पाया जाता है। गीता में उल्लेख है कि जिस साधक का मन समभाव में अवस्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है, क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है इसलिए वह ब्रह्म में ही स्थित है।[25] जो पुरुष प्रिय को प्राप्त होकर हर्षित नहीं हो और अप्रिय को प्राप्त होकर उद्विग्न न हो, वह स्थिरबुद्धि, संशयरहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्म में नित्य स्थित है।[26] इसी को गीता में योगस्थ कहा गया है, योगस्थ की स्थिति ही स्थितप्रज्ञता है।

गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को योगस्थ होकर कर्म करने हेतु उपदेश दिया है-

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

-गीता, 2.48

फल के प्रति आसक्ति का त्याग करते हुए, सफलता एवं असफलता में समान भाव रखते हुए योगस्थ होकर कर्म करो। समत्व ही योग है।

योगस्थ के लिए योगयुक्त या युक्त शब्द गीता में अन्यत्र प्रयोग किया गया है। अध्याय 6 में भगवान् कृष्ण कहते हैं जब साधक संयमित चित्त को आत्मा में स्थित कर निःस्पृह भाव से कर्म करता है तो वह साधक युक्त कहलाता है-

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते बुधैः॥

-गीता, 6.18.

यहाँ आत्मा ब्रह्म ही है (**अयमात्मा ब्रह्म।**[27]) अर्थात् कामनाओं (भोगों) से निःस्पृह होकर चित्त को भगवान् में समर्पित कर कर्म करना चाहिए। इसी तरह का उपदेश भगवान् कृष्ण ने अध्याय 8 में दिया है-

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवेष्यस्यसंशयः॥

-गीता, 8.7.

इसलिए मुझमें अर्थात् भगवान् में मन एवं बुद्धि को अर्पित करते हुए सभी कालों में मुझको (भगवान्

21. मनुस्मृति 2.161
22. मनुस्मृति : 2.89
23. मनुस्मृति : 2.100
24 छान्दोग्य उपनिषद्, 2.23.1.
25 गीता : 5.19.
26 गीता : 5.20.
27 माण्डूक्य उपनिषद्, 2, बृहदारण्यक उपनिषद्, 2.5.19.

को) स्मरण करते हुए युद्ध करो। यहाँ पर युद्ध आश्रम एवं वर्ण धर्म का उपलक्षणात्मक रूप में व्यवहृत हुआ है। इस प्रकार, ब्रह्मस्थ होकर गृहस्थ भी अमृतत्त्व की प्राप्ति कर सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रुति के अनुकूल धर्म के सभी अंगों के अनुपालन की विधि स्मृतियों में वर्णित की गयी है, जो आज भी हरेक गृहस्थ के लिए सुगमता एवं श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करने योग्य है। केवल संकल्प की आवश्कता है।

बौधायन धर्मसूत्र एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र में प्रजापति के वचन का उद्धरण देते हुए कहा गया है- "त्रयी विद्या (तीनों वेदों का अध्ययन), ब्रह्मचर्य, व्रत का पालन, सन्तानोत्पत्ति, श्रद्धा, तप का अनुष्ठान, यज्ञ का सम्पादन तथा दान- जो इन कर्मों को करते हैं, वे ही हमारे साथ (प्रजापति के साथ या प्रजापति लोक में) निवास करते हैं, जो इन कर्मों से भिन्न अन्य कर्मों की प्रशंसा करते हैं वे धूल में मिलकर नष्ट हो जाते हैं।"

त्रयीं विद्यां ब्रह्मचर्यं प्रजातिं
श्रद्धां तपो यज्ञमनुप्रदानम्।
य एतानि कुर्वते तैरित्सह स्मो
रजो भूत्वा ध्वंसतेऽन्यत्प्रशंसन्निति
प्रशंसन्निति॥[28]

इस कार्यों का सम्यक् सम्पादन गृहस्थाश्रम में ही सम्भव है, इसलिए यह आश्रम सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। अतः गृहस्थाश्रम के धर्म का सम्यक् रूप से अनुष्ठान करना चाहिए।

***

28 बौधायन धर्मसूत्र, 2.6.37. पृ. 258, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.24.8. पृ. 352.

बुद्ध-वचन

माता-पिता की सेवा

धम्मेन मातापितरो भरेय्य, पयोजये धम्मिकं सो वणिज्जं।
एतं गिही वत्तयमप्पमत्तो, सयम्पभे नाम उपेति देवे"ति॥29॥

धर्म से माता-पिता का पोषण करे और किसी धार्मिक कार्य में अपने को लगाये। जो अप्रमत्त गृहस्थ इस व्रत का पालन करता है वह स्वयंप्रभ नामक देवलोक में उत्पन्न होता है।

-सुत्तनिपात : 2.14.29

अथर्ववेदीय गृहस्थाश्रम की भूमिका

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर कृत अथर्ववेद हिन्दी भाष्य का तीसरा खण्ड गृहस्थाश्रम को प्रतिपादित करने वाले अथर्ववेदीय मन्त्रों का संकलन है। इसका प्रथम प्रकाशन स्वाध्याय मण्डल, पारड़ी, जिला बरसाड, गुजरात से हुआ था। इसकी भूमिका के आरम्भ में उन्होंने गृहस्थाश्रम के महत्त्व तथा मूलभूत तत्त्वों का मसावेश किया है। इसी भूमिका मे आगे उन्होंने एक-एक विषय को लेकर विस्तार से प्रतिपादन किया है। यहाँ भूमिका का आरम्भिक भाग प्रस्तुत है।

म.म. ब्रह्मर्षि श्रीपाद दामोदर सातलवेकर

इस पुस्तक में अथर्ववेद के गृहस्थाश्रम विषयक 65 सूक्तोंका समावेश है, इन सूक्तों में करीब करीब 1100 से अधिक मंत्र हैं।

गृहस्थाश्रम' चारों आश्रमोंका आधार है। ब्रह्मचर्य-आश्रम में विद्या प्राप्त की जाती है, इस कारण इस ब्रह्मचर्य-आश्रम में अर्थार्जन नहीं हो सकता। कमसे कम 25 वर्ष तककी आयु इस आश्रम में चली जाती है।

वानप्रस्थ और संन्यास ये दो आश्रम भी अर्थार्जन के लिए नहीं हैं। इस तरह आयुके तीन आश्रम- ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन तीन आश्रमोंमें धनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इस कारण ये तीनों आश्रम गृहस्थाश्रमपर ही आश्रित रहते हैं इस विषय में मनुस्मृति में कहा है-

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥14॥
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥15॥
स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्ग अक्षय्यमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः॥16॥
सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि॥17॥
यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥18॥
सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥38॥

(-मनुस्मृति)

"जिस तरह वायुका आश्रय करके सब प्राणी जीवित रहते हैं, उसी तरह गृहस्थाश्रमका आश्रय करके सब अन्य आश्रम जीवित रहते हैं। चूंकि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संम्यास इन तीनों आश्रमोंको दान तथा अन्न देकर प्रतिदिन गृहस्थी

आश्रय देकर सुरक्षित रखता है, इस कारण गृहस्थाश्रमी श्रेष्ठ है। इसलिये जिसको अक्षय स्वर्ग प्राप्त करनेको इच्छा है, तथा जो इस जगत् में सुख प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, उसे गृहस्थाश्रमका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। निर्बलोंसे इस गृहस्थाश्रमका पालन नहीं हो सकता। वेद और स्मृति के कथनानुसार इन सब आश्रमों में गृहस्थ ही श्रेष्ठ है, क्योंकि वह गृहस्थी अन्य तीनोंका भरण-पोषण करता है। जिस तरह नदी और नद समुद्रमें जाकर सुरक्षित होते हैं, उसी तरह सब अन्य आश्रम गृहस्थाश्रम के आधारसे सुरक्षित होते हैं। सेनापतिका कार्य, राज्यव्यवहारका कार्य, न्यायदानका कार्य, सब लोकोंके आधिपत्य के सब कार्य वेद-रूपी शास्त्र जाननेवाला गृहस्थी ही कर सकता है।"

इस तरह गृहस्थ आश्रमका महत्त्व स्मृतिग्रंथों में वर्णन किया है। सचमुच गृहस्थाश्रम ही सब राष्ट्रीय जीवनका आधार है। ऐसे सर्वश्रेष्ठ गृहस्थाश्रम के विषय में वेदमंत्रों में क्या कहा है, यह अवश्य देखना चाहिये। यह देखने के लिये ही इस तीसरे खण्डकी रचना की है, इसमें अथर्ववेद के इस विषय के मंत्र संग्रहीत हैं और इसमें मंत्रोंका गूढार्थ भी स्पष्टीकरण के द्वारा बताया है। वेद स्त्रीको कितनी उच्च अवस्थामें रखना चाहता है, यह वेदके निम्न मंत्रोंसे स्पष्ट होता है-

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥

(ऋ. 10.85.46)

सम्राज्ञेधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञेधि सम्राज्ञ्युत श्वश्वाः॥

(अथर्व 14. 1.44)

'हे स्त्री! तू श्वसुर, सास, ननद, देवर आदिकोंके साथ सुसरालमें जाकर सम्राज्ञी जैसी रह।' रानी जैसे राजमहल में भानंदसे रहती है, उसतरह तू रानी बनकर अधिकार के साथ वहां रह। कोई स्त्री दासीभावसे हीन अवस्थामें न रहे, अपितु उत्तम अधिकारसे ससुरालमें रहे, यह इन मंत्रोंका तात्पर्य है। और देखिये-

अघोरचक्षुरपतिघ्येधि
शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसूर्देवृकामा स्योना
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।

(ऋ. 10।85.44)

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना
शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयै-
धिषीमहि सुमनस्यमाना॥17॥
अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि
शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
प्रजापती वीरसूर्देषृकामा
स्योनेममा गार्हपत्यं सपर्यः॥18॥

(अथर्व. 14.2)

हे स्त्री! तू (अ-घोर-चक्षुः) अपनी दृष्टि क्रूर न रख, (अ-पतिघ्नी) पतिको कष्ट न दे, (पशुभ्यः शिवा) घर के पशुओं का कल्याण करनेवाली बन, तथा (सुमनाः सुवर्चाः) उत्तम मनवाली तथा उत्तम तेजस्विनी हो कर रह, (वीर-सूः) वीर पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाली हो, (देवृकामा) घरमें पतिके भाई हों, ऐसी इच्छा करनेवाली हो, (स्योना) सुख देनेवाली हो, (नः द्विपदे चतुष्पदे शंभव) हमारे दो पांववालों और चार पांव वालोंके लिये आनन्द देनेवाली हो। (शग्मा सुशेवा) सुखदायी तथा पतिकी उत्तम सेवा करनेवाली हो, (गृहेभ्यः सुयमा) घरवालों के लिये उत्तम नियमोंसे चलनेवाली बन कर रह, (प्रजावती) प्रजा उत्पन्न करनेवाली होकर इस गार्हपत्य अग्निकी उपासना कर।

इसतरह स्त्रीको घरकी सम्राज्ञी वेद बनाता है और देखिये-

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतां
अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं सं सृज-
स्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः॥

(ऋ. 10.85.27)

अपनी प्रजासे यहां तेरा प्यार हो, इस पतिके घरमें गृहस्थ-धर्मका पालन करनेके लिये जाग्रत रह, इस पतिके साथ सुखपूर्वक रह और यज्ञमें अपने पतिके साथ भाग ले।' तथा-

मा विदन् परिपन्थिनौ य आसीदन्ति दम्पती।
सुगेभिः दुर्गमतीनां अप द्वान्त्वरातयः॥

(अ. 14.2.11, ऋ. 10.85.32)

शत्रु इनके पास रहते हों, वे इन पति पत्नीको न जानें, ये दम्पती सुगम मार्गसे कठिन कार्यको करते रहें और जो इनसे दूर भाग जांय। तथा-

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापति-
राजरसाय समनक्त्वर्यमा।
अदुर्मंगलीः पतिलोकमा विश
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥
इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि॥

(ऋ. 10.85.43; 45)

प्रजाका पालक ईश्वर इस स्त्रीमें प्रजा उत्पन्न करे। अर्यमा वृद्धावस्था तक इसको ले जाय अर्थात् यह दीर्घायु हो। पतिके घर जाकर यह मंगल करनेवाली बने। द्विपाद और चतुष्पादों के लिये यह स्त्री कल्याण करनेवाली बने। हे इन्द्र! इस स्त्रीके उत्तम पुत्र हों, ऐसा कर। यह स्त्री सौभाग्यसे युक्त हो। हे स्त्री! तेरे दस पुत्र उत्पन्न हों और पश्चात् पतिको ग्यारहवां मान।

वेदमें दस पुत्र या दस संतान उत्पन्न करनेकी मर्यादा कही है। पर ब्राह्मण-ग्रंथोंमें 'अष्टपुत्रा' पदसे आठ पुत्र उत्पन्न करनेकी मर्यादा बताई है। वेदके समयमें और ब्राह्मण के समय में इतना परिवर्तन संततिनियमनके विषयमें हुआ है। आज तो सरकार संततिनियमन करनेवालोंकी सहायता कर रही है। इतना समय में परिवर्तन हो गया है। वैदिक कालमें दस पुत्रोंको इच्छा पति और पत्नी करते थे, ब्राह्मण कालमें वह इच्छा आठ पुत्रोंकी रह गई और आज संतति-नियमन एक आवश्यक तत्त्व बन गया। अस्तु। और देखिये –

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः मोदमानौ स्वे गृहे॥

(ऋ. 10।85।42)

मोदमानौ स्वस्तकौ।

(अ. 14.1.22)

'यहीं रहो, (मा वि यौष्टं) कभी विभक्त न होओ। संपूर्ण आयुका भोग करो। अपने घरमें आनंद के साथ पुत्रों और पौत्रों के साथ खेलते हुए आनंदसे रहो।

यहां (मा वि यौष्टं) विभक्त न होओ, ऐसा कहा है। विवाह-विच्छेदका इसतरह वेद निषेध करता है। सौ सवा सौ वर्षोंतक अपने पुत्र पौत्रोंसे खेलते और आनन्द" करते हुए अपने घरमें रहो। कभी विभक्त न होओ।

विवाहका विच्छेद नहीं करना चाहिये। अपने घरमें भानंदसे पुत्रों और पौत्रोंके साथ रहो। यह वेदकी आज्ञा हैं। स्त्रियां कैसी हों ?

स्त्रियां कैसी हों

इस विषय में वेद कहता है कि-

शुद्धाः पूताः योषितो यज्ञिया इमाः
ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि॥

(अ. 6.122.5)

शुद्ध पवित्र और पूजनीय ऐसी ये स्त्रियां हैं। इनको ज्ञानियों के हाथमें पृथक्-पृथक् देता हूं।' जिनको कन्या -दान करना हो, वे ज्ञानी हों, अज्ञानी न हों, तथा वे स्त्रियां विचारसे शुद्ध हों, पवित्र भाषण करनेवाली हों, और सदाचारी होने के कारण पूजनीय हों। विचार, उच्चार और भाचार में वे निर्दोष हों।

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विदन्ते पतिम्।

(अ. 11.5.18)

कन्या, कन्या-गुरुकुलमें रहकर विदुषी होती थी। इधर लड़का भी गुरुकुलमें रहकर विद्वान् होता था।

ऐसे दोनोंका (युवानं पतिं विन्दते) तारुण्यमें विवाह होता था। स्त्री भी तरुणी होती थी और वर भी युवा होता था। दोनों तरुण और विद्यायुक्त होते थे। इसलिये विवाह के मंत्र वे ज्ञानपूर्वक समझते थे।

'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष' ये चार पुरुषार्थ हैं। धर्मका आचरण ब्रह्मचर्याश्रममें शुरू होता है। तदनंतर 'अर्थ' को- धनको प्राप्त करना होता है। धन प्राप्त करके काम अर्थात् विवाह करके गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होना होता है। इसलिये चतुर्विध पुरुषार्थों में 'अर्थ' को पहिले रखा और 'काम' को उसके पश्चात् रखा है। धनहीनसे गृहस्थ-धर्मका पालन ठीकतरह नहीं हो सकता है, इसलिये कहा है कि-

भगेन सह कुमारी आगमेत्।

(अथर्व. 2. 36.1)

'धनके साथ कुमारीके पास जावें और उसको पत्नीके रूपमें प्राप्त करें।' स्त्रीका और बालबच्चों के पोषण करनेका भार पुरुषपर भाता है। इसलिये विद्या प्राप्त करनेके पश्चात् पुरुष धन प्राप्त करे और पश्चात् विवाहका विचार करे। विवाहके पश्चात् —

भगस्य जुष्टा इयं नारी
पत्या अविराधयन्ती सं प्रिया अस्तु॥

(अथर्व. 2. 36.4.)

ऐश्वर्यको प्राप्त हुई यह स्त्री, पतिसे विरोध न करती हुई पतिको प्रिय हो। ' विवाहके पूर्व यह स्त्रीको शिक्षा मिलनी चाहिये कि वह पति के घर किस तरह रहे। आजकल स्वतंत्र विचार बढाये जाते हैं। स्वतंत्र विचार अवश्य चाहिये, विचारोंको गुलामी नहीं चाहिये, परंतु वह स्वतंत्रता ऐसी नहीं चाहिये, कि जो पतिपत्नीमें विरोध पैदा करे। इसलिये कहा है कि-

पतिं गत्वा सुभगा वि राजतु
पुत्रान् सुवाना महिषी भवाति।

(अथर्व. 2 ।36 ।3)

यह स्त्री पति के घर जाकर उत्तम ऐश्वर्य युक्त बने, पुत्रोंको उत्पन्न करके रानी जैसी विराजती रहे। यहां 'महिषी भवाति' यह पद मुख्य है। सम्राज्ञी या रानी-जैसी यह स्त्री पति के घर विराजती रहे। स्त्रीकी यह योग्यता है। राष्ट्रका संवर्धन करनेका कार्य स्त्रियोंका है। स्त्रियां संतान उत्पन्न करती हैं, जिससे राष्ट्र बढता रहता है। जिस राष्ट्रमें केवल पुरुष ही पुरुष हों, वह राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। प्रजाकी वृद्धि करना स्त्रियोंका ही कार्य है। इसलिये स्त्रियों को रानी के समान घरमें रखना चाहिये, ऐसा वेद कहता है। पतिके घर आयी हुई स्त्री क्या क्या इच्छा करे, इस विषयमें कहा है

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।

(अथर्व. 14.1.42)

स्त्री पति के घर (सौ-मनसं) उत्तम मन और उत्तम विचारों के साथ रहे, (प्रजां) उत्तम संतान होनेकी इच्छा करे, मेरे द्वारा उत्तम संतान उत्पन्न हों ऐसा विचार मनमें धारण करे, उत्तम भाग्य और ऐश्वर्य प्राप्त हो ऐसी इच्छा स्त्री करे। घरके व्यवहार ऐसे करे कि जिससे वह घरकी रानी है ऐसा देखने वालोंको पता लगे।

पत्युः अनुव्रता भूत्वा संनह्यस्व अमृताय कम्।

'घरमें स्त्री पतिके अनुकूल बर्ताव करती रहे। और अमरत्व और आनन्द प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करे।' अमृत और आनन्द प्राप्त करना चाहिये। अमृतत्वका अर्थ दीर्घ-जीवन और आनन्दका अर्थ मनका शान्तिपूर्ण सुख है, यह तो उस समय प्राप्त हो सकता है कि जिस समय घरमें पति के अनुकूल आचरण करनेवाली पत्नी हो और पत्नी के अनुकूल आचरण करनेवाला पति हो। घरमें परस्पर अनुकूल वर्ताव हो, तो आनन्द और शान्ति स्थापित हो सकती है। मानवोंमें मतभेद तो होते ही रहेंगे, पर उनको बढ़ाना नहीं चाहिये, मर्यादामें रखना चाहिये, उससे घरमें शान्तिसुख बढ सकता है।

***

गृहस्थ-आश्रम पर दयानन्द सरस्वती के विचार

डॉ. सरोज शुक्ला
के ए 94/628, कुरमनचल नगर, लखनऊ..226016

आधुनिक काल के धर्मसुधारकों में दयानन्द सरस्वती सर्वाधिक चर्चित रहे हैं। उनके ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का हिन्दी भाषाभाषी क्षेत्र में सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। यद्यपि उनके द्वारा प्रतिपादित सभी सिद्धान्त सनातन की धारा के अनुकूल नहीं हैं, तथापि गार्हस्थ्य-जीवन पर उनका विचार आधुनिक समाज पर पर्याप्त प्रभाव डाल चुका है। अतः उन्हें देखना आवश्यक हो जाता है। उन्होंने मूलतः मनुस्मृति का आश्रय लेकर शिक्षित युवा-युवती के बीच वैवाहिक संबन्ध की वकालत की है। व्यवहार में भलें आर्यसमाज मन्दिरों में होने वाले विवाह संदेह के घेरे में आ रहे हैं किन्तु उनके ग्रन्थ में प्रतिपादित सिद्धान्त अवलोकनीय हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा प्रतिपादित गार्हस्थ्य-धर्म के साथ साथ यहाँ अनेक सूक्तियों का संग्रह भी किया गया है, जिनमें गृहस्थाश्रम की रूपरेखा के साथ उसके लिए प्रशंसात्मक वचन हैं।

वैदिक रीति में जिन चार आश्रमों की व्यवस्था की गयी थी वे हैं- ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम। प्राचीन काल में इसी व्यवस्था के लिए बच्चों को गुरुकुल भेज दिया जाता था। वहां बच्चे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके विद्या अध्ययन करते थे। फिर विद्या अध्ययन के पश्चात् अपने माता-पिता के पास आकर गृहस्थ-आश्रम में आने के लिए विवाह संपन्न करते थे।जिस मनुष्य के मन में भोगेच्छा है या जो अपनी वंश परंपरा को आगे बढ़ाना चाहता है तो ऐसे व्यक्ति को विवाह करना चाहिये क्योंकि गृहस्थ-आश्रम ही सब आश्रमों का पालक है। मनुष्य शरीर और गृहस्थ-आश्रम उद्धार करने का खास जरिया है।

भोग भोगने और आराम करने के लिए यह मनुष्य शरीर नहीं है। प्राणिमात्र की हित की भावना रखते हुए गृहस्थ-आश्रम में रहना चाहिये और अपनी शक्ति के अनुसार तन, मन, धन, बुद्धि आदि के द्वारा दूसरों को सुख पहुँचाना चाहिये। दूसरों की सुख-सुविधा के लिए त्याग करना मनुष्यता है। इसी के साथ ईश्वर का सतत चिंतन-मनन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

वैदिक रीति से या समाज में मान्य अन्य रीति रिवाज से संपन्न विवाह की मान्यता समाज में होती है। भारतीय समाज में विना विवाह संपन्न किये स्त्री-पुरुष का साथ में रहना उचित नहीं माना जाता है। उन्हें समाज में आदर प्राप्त नहीं होता। इसलिए यदि

उपरोक्तानुसार विवाह करना आवश्यक है तो अपनी वंश-परंपरा के अनुसार विधि-विधान से विवाह संपन्न कराना चाहिये।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की विवाह सम्बन्धी मान्यता

महर्षि दयानन्द जी ने अपने समय में अपने अपूर्व ज्ञान से सभी भ्रान्तियों का निराकारण किया। आश्रम व्यवस्था में गृहस्थाश्रम पर आपने अपने बहुमूल्य विचार प्रस्तुत किये हैं जिन पर इस लेख में दृष्टि डाल रहे हैं। महर्षि दयानन्द प्रश्न करते हैं कि गृहस्थाश्रम अन्य तीन ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में सब से छोटा है वा बड़ा है? इसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं कि अपने-अपने कर्तव्यकर्मों में सब आश्रम बड़े हैं। परन्तु—

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥1॥
यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥2॥

उपर्युक्त दोनों श्लोक मनुस्मृति के हैं। महर्षि दयानन्द ने इस प्रसंग में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में अन्य दो श्लोक भी दिये हैं।

इन चारों श्लोकों का अर्थ करते हुए वह कहते हैं कि जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमण करते व बहते ही रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते है। बिना इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता। जिससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमों को गृहस्थाश्रमी दान और अन्नादि देकर प्रतिदिन ही धारण करते हैं इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है, अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहलाता है। इसलिये जो मनुष्य वा स्त्री-पुरुष अक्षय मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता हो वह प्रयत्न से गृहाश्रम को धारण करे। यह गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और निर्बल पुरुषों से धारण करने से अयोग्य है। इसको (ब्रह्मचारीगण) अच्छे प्रकार से वरण कर धारण करें। यह मनुजी के विचार व आदेश हैं।

मनु के इन विचारों को प्रस्तुत कर महर्षि दयानन्द टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि इस कारण से जितना कुछ व्यवहार संसार में है उस का आधार गृहस्थाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम कहां से हो सकते? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है। परन्तु गृहाश्रम में तभी सुख होता है जब स्त्री पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों। इसलिये गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और स्वयंवर (वर-वधू द्वारा विवेकपूर्वक स्वयं निश्चित) विवाह है।

वैवाहिक जीवन में संयम रखने और ब्रह्मचर्य का पालन करने की ओर भी महर्षि दयानन्द गृहस्थियों का ध्यान दिलाते हैं। वह कहते हैं कि गृहस्थ के स्त्री व पुरुषों को यह ध्यान रखना चाहिये कि उनके शरीर में सन्तान उत्पन्न करने के ईश्वर ने जो पदार्थ रज व वीर्य बनाये हैं उनको वह अमूल्य समझे।

जो कोई इस अमूल्य पदार्थ को परस्त्री, वेश्या वा दुष्ट पुरुषों के संग में खोते हैं वे महामूर्ख होते हैं। किसान वा माली मूर्ख होकर भी अपने खेत वा वाटिका के विना अन्यत्र बीज नहीं बोते। जब साधारण बीज और मूर्ख किसान वा माली का ऐसा वर्तमान है तो जो सर्वोत्तम मनुष्य-शरीर रूप के बीज को कुक्षेत्र में खोता है वह महामूर्ख कहाता है, क्योंकि उस का उत्तम फल उस मानव बीज की महत्ता न समझने वाले को नहीं मिलता। **'आत्मा वै जायते पुत्रः'** यह ब्राह्मण ग्रन्थ और निम्न श्लोक सामवेद के ब्राह्मण ग्रन्थ का है।

अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधि जायसे।
आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम्॥

इस श्लोक में पिता कहता है कि हे पुत्र! तू अंग-अंग से उत्पन्न हुए वीर्य से और हृदय से उत्पन्न होता है। इसलिये तू मेरा आत्मा है, मुझ से पूर्व मत मरना किन्तु सौ वर्ष तक जीवत रहना। जिस पौरुष शक्ति वीर्य से ऐसे-ऐसे महात्मा और महाशयों के शरीर उत्पन्न होते हैं उस को वैश्यादि दुष्ट क्षेत्र में बोना वा दुष्टबीज अच्छे क्षेत्र में बुवाना महापाप का काम है। महर्षि दयानन्द ने इन पंक्तियों में जो बात कही है वह चिकित्साशास्त्र और वैदिक ज्ञान का निष्कर्ष है और सदाचार का आधार है।

पाश्चात्त्य जगत् में विवाह की अवधारणा

एक समय था जब यूरोप में लोग बिना विवाह किये स्वेच्छाचार करते थे। तब वहाँ के एक सदाचारी पुरुष वैलेण्टाइन ने आन्दोलन किया और लोगों को विवाह के लिए सहमत किया था। वैलेण्टाइन अल्पायु में ही मृत्यु का ग्रास बन गये थे अन्यथा वह इस दिशा और बहुत कार्य करते। उनके नाम पर ही वैलेण्टाइन दिवस मनाया जाता है परन्तु उनकी भावनाओं को भुला दिया गया है।

भारत में विवाह का प्रचलन सृष्टि के आदि काल में ही वेदों की शिक्षाओं के आधार पर अस्तित्व में आ गया था। अनेक दुर्मति लोग भी विवाह के विषय में समय-समय पर प्रश्न उठाते रहते हैं।

महर्षि दयानन्द ने भी इन प्रश्नों को उठाया और उनके उत्तर दिये हैं। उन्होंने प्रश्न किया है कि विवाह क्यों करना चाहिये? क्योंकि इस से स्त्री पुरुष को बन्धन में पड़कर बहुत संकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है इसलिये जिस के साथ जिस की प्रीति हो तब तक वह मिले रहें, जब प्रीति छूट जाय तो छोड़ देवें?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि दयानन्द कहते हैं कि यह पशु पक्षियों का व्यवहार है, मनुष्यों का नहीं। जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहे तो गृहाश्रम के अच्छे-अच्छे व्यवहार सब नष्ट भ्रष्ट हो जायें। कोई किसी की सेवा भी न करे। और महाव्याभिचार बढ़ कर सब रोगी निर्बल और अल्पायु होकर शीघ्र-शीघ्र मर जायें। कोई किसी से भय व लज्जा न करे। वृद्धाश्रम में कोई किसी की सेवा भी नहीं करे और महाव्यभिचार बढ़ कर सब रोगी निर्बल और अल्पायु होकर कुलों के कुल नष्ट हो जायें। कोई किसी के पदार्थों का स्वामी वा दायभागी भी न हो सके और न किसी का किसी पदार्थ पर दीर्घकालपर्यन्त स्वत्व वा अधिकार रहे, इत्यादि दोषों के निवारणार्थ विवाह ही होना सर्वथा योग्य है।

महर्षि दयानन्द ने विवाह के पक्ष में इन तर्कों को देकर विवाह विषयक कुतर्क करने वालों के मुंह पर ताला लागा दिया है।

आज के समाज में लिवइनरिलेशन व होमोसेक्सुअलिटी के अमर्यादित, ईश्वर व सृष्टि के नियमों के विरुद्ध, व्यवहार व मांगों के परिप्रेक्ष्य में भी महर्षि दयानन्द का विवाह के समर्थन में दिया गया उत्तर विचारणीय एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

महर्षि दयानन्द जी ने गृहस्थाश्रम के विषय में सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास सहित संस्कारविधि व अपने वेदभाष्य में बहुत ही महत्त्वपूर्ण विचारों व वैदिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है जो आज भी प्रासंगिक एवं उपादेय हैं।

अनेक वैदिक विद्वानों ने भी इस विषय में कुछ लाभकारी ग्रन्थों की रचना की है जिनसे लाभ उठाया जा सकता है। आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द स्त्री जाति के सर्वाधिक हितैषी महापुरुष हुए हैं। विवाह की व्यवस्था का आरम्भ वेदों से संसार में हुआ है जिसको इस पृथिवी के सभी भूभागों के लोगों द्वारा अपनाया गया। कालान्तर में विवाह विषयक कुछ नियमों व व्यवहारों को लोग भूल बैठे थे जिससे अनेक समस्यायें उत्पन्न हुईं।

आज महर्षि दयानन्द ने विवाह विषयक सभी समस्याओं एवं गृहस्वामी व गृहसम्राज्ञी अर्थात् पति व धर्मपत्नी के विषय में विवाह की अर्हतायें, गुणकर्मस्वभाव की समानता, आयुभेद, गृहस्थ-आश्रम में पति व पत्नी के कर्तव्य वा दायित्व आदि विषयों पर पड़े अज्ञानता व रूढिवाद के आवरण को हटा दिया है। महर्षि दयानन्द के विचार सभी मतों व धर्मों के लोगों के लिए उपादेय व प्रगतिसूचक हैं। सभी को इनका अध्ययन कर इनसे लाभ उठाना चाहिये।

प्रथमेनार्जिता विद्या द्वितीयेनार्जितं धनम्।
तृतीयेनार्जिता कीर्तिः चतुर्थे किं करिष्यति॥

अर्थात् जिसने भी प्रथम आश्रम (ब्रह्मचर्य) में विद्या अर्जित नहीं की है, द्वितीय आश्रम (गृहस्थ) में धन अर्जित नहीं किया है, तृतीय आश्रम (वानप्रस्थ) में कीर्ति अर्जित नहीं की है (पुण्य नहीं कमाया), वह चतुर्थ आश्रम (संन्यास) में क्या करेगा? सनातन धर्म में कर्त्तव्य पालन के लिए चार आश्रम दिये गये है, जिससे व्यक्ति को जीवन जीने के लिए लक्ष्य मिल सके।

ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यास

1. ब्रह्मचर्य – 25 वर्ष तक की आयु, विद्याप्राप्ति करके जीवन को खुद के बलबूते पर चलाने के लिए तैयार हो जाना है।

2. गृहस्थ– 25 से 50 वर्ष तक की आयु, विवाह करके पारिवारिक और सामाजिक दायित्व निभाना है।

3. वानप्रस्थ- 50 से 75 वर्ष तक की आयु, पारिवारिक जिम्मेदारियों से निवृत्त हो जाना है और बहु-बेटे को सारी जिम्मेदारी दे देनी है, बच्चे बड़े हो जाने से धीरे धीरे सारी इच्छाओं को वश में करना शुरू कर देना है, सेवा और भक्ति में समय बिताना है।

4. संन्यास- 75 वर्ष की आयु के बाद का जीवन, सांसारिक दुनिया से बिलकुल मुक्त रहना है, त्यागी या तपस्वी के जैसे जीवन व्यतीत करना है, सिर्फ भक्ति भाव में ही समय बिताना है।

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दानुगामिनी।
विभवे यश्च सन्तुष्टः तस्य स्वर्ग इहेव हि॥

जिसका पुत्र उसके वश है, पत्नी कहा करनेवाली है, और वैभव से जो संतुष्ट है, उसके लिए तो यहीं स्वर्ग है।

अर्थागमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या
षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥

हे राजन्! अर्थोपार्जन, अरोगित्व, अच्छी लगने वाली और प्रिय बोलने वाली पत्नी, अपने आधीन पुत्र, और अर्थकरी विद्या – ये छह जीवलोक के सुख है।

वनेऽपि दोषा प्रभवन्ति रागिणां
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रह स्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्॥

आसक्त लोगों का वन में रहना भी दोष उत्पन्न करता है। घर में रहकर पंचेन्द्रियों का निग्रह करना हि तप है। जो दुष्कृत्य में प्रवृत्त होता नहीं, और आसक्तिरहित है, उसके लिए तो घर ही तपोवन है।

तप्त्वा तपस्वी विपिने क्षुधार्तो
गृहं समायाति सदान्नदातुः।
भुक्त्वा स चान्नं प्रददाति तस्मै
तपो विभागं भजते हि तस्य॥

तपस्वी वन में तप करके जब भूख से पीडित होता है, तब वह अन्नदाता के घर आता है। वहाँ अन्न लेकर, वह (एक तरीके से) अपने तप का हिस्सा उसे बाँटता है। ऐसा गृहस्थाश्रम धन्य है

गृहस्थी पर संस्कृत श्लोक हिंदी में

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥

जिस तरह सब जन्तु वायु को आश्रित होते हैं, वैसे सब आश्रम गृहस्थ (आश्रम) पर आश्रित हैं।

क्रोशन्तः शिशवः सवारि सदनं पङ्कावृतं चाङ्गणम्
शय्या दंशवती च रुक्षमशनं धूमेन पूर्णः सदा।
भार्या निष्ठुरभाषिणी प्रभुरपि क्रोधेन पूर्णः सदा
स्नानं शीतलवारिणा हि सततं धिग् गृहस्थाश्रमम्॥

जिस घर में बालक रोते हो, सब जगह पानी गिरा हो, आंगन में कीचड़ हो, गद्दों में मांकड हो, खुराक रुक्ष हो, धूँए से घर भरा हो, पत्नी निष्ठुर बोलनेवाली हो, पति सदा क्रोधी हो, ठंडे पानी से स्नान करना पडता हो — ऐसे गृहस्थाश्रम को धिक्कार है।

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता प्रियभाषिणी
सन्मित्रं सधनं स्वयोषिति रतिः चाज्ञापराः सेवकाः।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे
साधोः सङ्गमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः॥

सुभाषितरत्नाकर, मुंबई, 1888, पृ. 112.

घर में आनंद हो, पुत्र बुद्धिमान हो, पत्नी प्रिय बोलनेवाली हो, अच्छे मित्र हो, धन हो, पति-पत्नी में प्रेम हो, सेवक आज्ञापालक हो, जहाँ अतिथि सत्कार हो, ईशपूजन होता हो, रोज अच्छा भोजन बनता हो, और सत्पुरुषों का संग होता हो— ऐसा गृहस्थाश्रम धन्य है।

संदर्भः

1. एस. राधाकृष्णन, द हिन्दू धर्म, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एथिक्स, 2004, 33(1): 1-22
2. राजेन्द्र के शर्मा, (2004). संस्थाएं और बदलाव ,नई दिल्ली: एंटाल्टिक. आई०एस०बी०एन० 81-7156-665-0.
3. साहेबराव गेनु निगल (1986). नोर्दन बुक सेंटर. पपृ० 110—114. आई०एस०बी०एन० 81-85119-18-X.
4. मणिलाल बोस (1998). प्राचीन भारत का सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास] कोन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी. पृ० 68. आई०एस०बी०एन० 81-7022-598-1.
5. हिंदी. वेबदुनिया. सनातन-धर्म-नीति-नियम.हिन्दू-गृहस्थ-आश्रम
6. पेपर. लाइव हिंदुस्तान भारतीय समाज, जनवरी 2021
7. सत्यार्थसौरभ, जुलाई 2014

***

सनातन-वचन

माता-पिता की सेवा से उत्तम लोक की प्राप्ति

देवगन्धर्वगोलोकान् ब्रह्मलोकांस्तथापरान्।
प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातापितृपरायणाः॥

माता-पिता की सेवा में लगे रहने वाले महात्मा पुरुष देवलोक, गन्धर्वलोक, ब्रह्मलोक, गोलोक तथा अन्य लोकों को प्राप्त कर लेते हैं।

-वाल्मीकि-रामायण 2.30.36.

मनुस्मृति में गृहस्थाश्रम

श्री संजय गोस्वामी

हिन्दी के क्षेत्र में 1500 से अधिक लेख विभिन्न विज्ञान तथा हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं विज्ञान लोकप्रिय के लिए उन्हें कई सम्मान भारत गौरव 2011, भक्ति काव्य श्री 2007, डॉ गोरख प्रसाद विज्ञान पुरस्कार, 2009, विज्ञान परिषद शताब्दी पुरस्कार 2013, डॉ सीवी रमन विज्ञान संचार पुरस्कार, 2015, एनएफएमआई 2021 अवार्ड आदि प्राप्त है

भारतीय जीवन शैली की विशेषता है कि यहाँ सम्पूर्ण जीवन को चार भागों में बाँटकर एक दूसरे के साथ सम्बद्ध करते हुए मानव-कल्याण के अनुरूप व्यवस्थित किया गया है। स्मृतिकारों ने इस आश्रम-धर्म पर पर्याप्त विवेचन किया है। इनमें से गृहस्थ-आश्रम की मर्यादाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है, क्योंकि यहाँ अनुचित कर्म में लिप्त होने के लिए विशेष अवसर मिल जाते हैं। गृही समाज में रहते हैं, उन्हें सामाजिक सरोकार निभाना होता है अतः संसर्ग के कारण उत्पन्न दोष-गुणों से वे असंपृक्त नहीं रह सकते। अतः गृहस्थ-आश्रम के लिए विशेष रूप से मनुस्मृति तथा विष्णुपुराण में समेकित विवरण दिया गया है। मिथिला के 14वीं शती के धर्माधिकरणिक म.म. चण्डेश्वर ने गृहस्थरत्नाकर नामक एक विशाल ग्रन्थ की ही रचना कर दी। स्मृतिकारों ने गृहस्थाश्रमियों के लिए बहुत कुछ रियायत दी है, उन्हें पंचमहायज्ञ करने के कारण पंचसूना दोष से मुक्त कर दिया है। इन सब वि ायों पर यहाँ विवेचन प्रस्तुत है।

ऋग्वेद विश्व का सबसे प्राचीन ग्रंथ है जो वर्तमान समय में उपलब्ध है। ऋग्वेद के कई सूक्तों में विभिन्न वैदिक देवताओं की स्तुति करने वाले मंत्र हैं। यद्यपि ऋग्वेद में अन्य प्रकार के सूक्त भी हैं, परन्तु देवताओं की स्तुति करने वाले स्तोत्रों की प्रधानता है। ऋग्वेद में 33 देवी-देवताओं का उल्लेख है। ऋग्वेद में गृहस्थाश्रम को धन्य एवं श्रेष्ठ कहा गया है। यदि गृहस्थ अपनी परम्परा, दायित्व और मर्यादाओं का पूर्णतया निर्वाह करे तो गृहस्थ-आश्रम धन्य हो जाता है। यथा :

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कांता प्रियालापिनी
इच्छापूर्तिधनं स्वयोषिति रतिः स्वाज्ञापराः सेवकाः॥
आतिथ्यं सुरपूजनं प्रतिदिनं मिष्ठान्नपानं गृहे
साधोः सङ्गमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः।

-सुभाषितरत्नभाण्डागार, गृहस्थाश्रमप्रशंसा, पृ. 132

अर्थात् जिस गृहस्थ जीवन में आनंदपूर्ण गृह, बुद्धिमान पुत्र, प्रियवंदा स्त्री, इच्छापूर्ति के लिए पर्याप्त धन, अपनी पत्नी से प्रीति, आज्ञाकारी सेवक, अतिथि सत्कार, देव पूजन, प्रतिदिन मधुर भोजन तथा संतों के संग सत्संग का सुअवसर सदा सुलभ होता है, वही गृहस्थाश्रम धन्य है।

'जीवेम वयं शरदः शतम्' की कामना करने वाले भारतीय आर्य (हिन्दू) ऋषियों ने मानव की आयु को सौ वर्ष मानकर उसे पच्चीस-पच्चीस के चार भागों में विभक्त कर इन्हें क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ

और संन्यास आश्रम नाम दिये हैं। यद्यपि ऋग्वेद काल में यह आश्रम-व्यवस्था पूर्ण रूप से तथा विकसित नहीं हो पाई थी; परन्तु वेदोत्तरकालीन संस्कृतसाहित्य में इस आश्रम-व्यवस्था को स्पष्ट देखा जा सकता है। मनुस्मृति को हिन्दुओं का पवित्र ग्रन्थ माना जाता है। इसमें मनु ने आर्यों (हिन्दुओं) के लिए चार आश्रमों का प्रतिपादन किया है। ब्रह्मचर्याश्रम के अन्तर्गत व्यक्ति के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना तथा वेदाध्ययन करना मनु ने आवश्यक कहा है। गुरु की आज्ञा से ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश कर ग्रहस्थधर्म का पालन करने के बाद व्यक्ति को ग्राम्य आहार और वस्त्रांलकार त्यागकर वानप्रस्थ आश्रम के नियमों का पालन करने को वैवस्वत् मनु ने कहा है। अन्तिम संन्यास आश्रम के विषय में मनु कहते हैं कि व्यक्ति को एकाकी रहते हुए मोक्ष की सिद्धि का प्रयत्न करते हुए शरीर का त्याग करना चाहिए। इस प्रकार चारों आश्रमों का पालन करने वाला व्यक्ति इहलोक व परलोक में महान् कल्याण और लाभ प्राप्त करता है।

हिन्दुओं के वैदिक-ग्रन्थों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष बतलाई गई है- **शतायुर्वै पुरुषः**। इससे हमें पता चलता है कि उस समय साधारणतया एक मानव सौ वर्ष तक जीता था। ऋग्वेद में गृत्समद ऋषि सौ वर्ष तक जीने की कामना करते हुए रुद्र से प्रार्थना करते हैं-

त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः। व्यस्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः॥

अर्थात् रुद्र हमें शतायु होने का वर प्रदान करे। रुद्र द्वारा प्रदत्त कल्याणमयी औषधियों से हम सौ हेमंत ऋतुओं तक आयु प्राप्त करें। इस प्रकार 'जीवेम वयं शरदः शतम्' की कामना करने वाले आर्य (हिन्दू) ऋषियों ने मानव की आयु को सौ वर्ष मानकर उसे पच्चीस-पच्चीस के चार वर्गों में विभक्त कर इन्हें क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम नाम दिये हैं। यद्यपि ऋग्वेद काल में यह आश्रम-व्यवस्था पूर्णरूप से तथा विकसित नहीं हो पाई थी परन्तु वेदोत्तरकालीन संस्कृतसाहित्य में इस आश्रम-व्यवस्था को स्पष्ट देखा जा सकता है।

मनुस्मृति को हिन्दुओं का पवित्र व महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। प्राचीनकाल में इसे हिन्दुओं का कानूनी-ग्रन्थ भी माना जाता था। इसमें वैवस्वत मनु ने भृगु के माध्यम से मनुष्य को कर्तव्याकर्तव्य कर्मों का ज्ञान करवाते हुए मनुष्य के जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया है।

मनु ने ब्रह्मचर्याश्रम के अन्तर्गत ब्रह्मचारी के लिये अनेक कर्तव्य कर्मों का विधान किया है। मनु ने पच्चीस वर्ष के स्थान पर ब्रह्मचर्य व्रतधारी को क्रमशः 36, 18 या 9 वर्ष तक वेदाध्ययन करने का नियम बनाया, परन्तु अन्य शास्त्रों में पच्चीस वर्षों का ब्रह्मचर्याश्रम अधिक मान्य रहा है। मनु ने कहा है कि ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह अखण्डित ब्रह्मचर्य को धारण करते हुए तीनों वेदों का अध्ययन करे। इतना सामर्थ्य न होने पर दो वेदों का अध्ययन करे। इस पर भी असमर्थ होने पर एक वेद का अध्ययन करे; परन्तु बिना वेदाध्यन किए गृहस्थाश्रम में प्रवेश न करे।

वैवस्वत् मनु ने ब्रह्मचारी को उपदेश दिया है कि वह इन्द्रियों का निग्रह करे, नित्य स्नान कर देवताओं का पूजन और पितरों का तर्पण करे, सायंकाल हवन करे, समिधा लाये, भिक्षाटन करे, आचार्य की आज्ञा या आज्ञा नहीं होने पर भी नित्य वेदाध्ययन करे, गुरु की प्रत्येक आज्ञा का पालन करे, गुरु के सोने के बाद सोये तथा उनके उठने के पूर्व उठे।

इसी प्रकार मनु ने ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करने वाले ब्रह्मचारी के लिये फूलों की माला पहनना, रस, स्त्री, आचार तथा जीवों की हिंसा, शरीर में तेल लगाना, आँखों में अंजन, जूता एवं छाता धारण करना, काम, क्रोध, लोभ, नृत्य-गायन, द्यूत-क्रीड़ा,

दूसरों की निन्दा, असत्य भाषणादि का त्याग करने को कहा है। ब्रह्मचारी को स्त्री-मोह से सावधान करते हुए मनु का कथन है -

स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः॥

(मनुस्मृति 2-213)

अर्थात् पुरुषों को दूषित करना नारियों का स्वभाव है। इसलिये ज्ञानी पुरुष युवती स्त्रियों के सम्बन्ध में कभी असावधान नहीं होते। इस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम अति दुष्कर एवं कठोरतम चरण है। इस काल में व्यक्ति न केवल विद्याध्ययन करता है, बल्कि उच्चकोटि के चरित्र निर्माण के द्वारा जीवन में अनुशासन का महत्त्व भी समझ लेता है।

ब्रह्मचर्याश्रम के बाद ब्रह्मचारी गुरु की आज्ञा पाकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। संतानोत्पत्ति के लिये सवर्ण कन्या से विवाह कर धर्मपूर्वक अपने कत्रव्यों का पालन करना अनिवार्य था। गृहस्थाश्रम के महत्त्व का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि जिस प्रकार वायु का आश्रय लेकर सब जीव जीते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय लेकर सभी आश्रमों के अन्तर्गत रहने वाले मनुष्य अपने धर्मों का निर्वाह कर पाते हैं। अन्य तीनों ही आश्रम वाले व्यक्ति गृहस्थ से ज्ञान एवं दान पाते हैं। गृहस्थ गुरु ही ब्रह्मचारियों को विद्यादान देते हैं तथा गृहस्थ ही उन्हें भिक्षादान देते हैं। इसलिए अन्य तीनों ही आश्रमों को धारण करने के कारण गृहस्थाश्रम सबसे बड़ा माना जाता है। गृहस्थाश्रम की सफलता के विषय में मनु कहते हैं कि जिस कुल में पति-पत्नी एक दूसरे से सन्तुष्ट रहते हैं, उस कुल का सदैव कल्याण होता है।

गृहस्थाश्रम के बाद जब व्यक्ति अपने पुत्र पर गृहभार सौंपकर वन गमन करता है तो इस क्रिया को जीवन के तीसरे भाग में किया जाने के कारण इसे वानप्रस्थ आश्रम कहा जाता है। इस विषय में मनु का कथन है-

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्॥

(मनुस्मृति, 6.2.)

अर्थात् गृहस्थ जब देखें कि अपने शरीर पर झुर्रियां पड़ी है, केश श्वेत हो गये हैं और अपने पुत्र के भी पुत्र हो चुके हैं, तब वन का आश्रय करे। वानप्रस्थाश्रम के समय व्यक्ति को ग्राम्य आहार (चावल, आटा आदि) और वस्त्रालंकार त्यागकर स्त्री को पुत्र के सुपुर्द कर अथवा अपने साथ ले वन में जाये। मनु कहते हैं कि इस आश्रम में जो भोजन विहित हो, उसी में से यथाशक्ति बलि और भिक्षा दे। आश्रम में आये हुये अतिथि को जल, मूल, फल की भिक्षा से पूजित करे। इस प्रकार वानप्रस्थी व्यक्ति के लिये यज्ञ, स्वाध्याय, व्रतादि नियमों का पालन करने के लिये कहा गया है।

मनु कहते हैं कि आयु के तृतीय भाग को वानप्रस्थ अवस्था में बिताकर आयु के चैथे भाग में सर्वसंगपरित्याग कर व्यक्ति को संन्यास ग्रहण करना चाहिए। एकाकी पुरुष को ही मुक्ति मिलती है, यह जानकर संन्यासी किसी को साथ न लेकर अकेला ही मोक्ष की सिद्धि के लिये रहे। इस प्रकार एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाकर जितेन्द्रिय हो भिक्षा बलिवैश्वदेव और अग्निहोत्र आदि का नित्य कर्म करते -करते थक जाने पर अन्त में संन्यास ग्रहण कर शरीर का त्याग करना चाहिए। इस प्रकार चारों आश्रमों का पालन करने वाला व्यक्ति इहलोक और परलोक में महान् कल्याण और लाभ प्राप्त करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि आर्य (हिन्दू) ऋषियों द्वारा प्रतिपादित आश्रम-व्यवस्था जीवन को संयमित रूप से जीने की कला है। पद्मपुराण उत्तरखण्ड, 74.12 के अनुसार

'गृहस्थाश्रमः पुण्यतमः सर्वदा तीर्थवद् गृहम्।'

अर्थात् गृहस्थाश्रम परम पवित्र है, घर सदा तीर्थ के समान है।

जीवन मुक्त, परमसिद्ध विरक्त योगी, यति, सन्यासी भी गृहस्थ के आतिथ्य का आश्रय लेते हैं और गृहस्थ 'अतिथि-देवो भव' सार्थक कर अपने को धन्य और बड़भागी समझता है। हिन्दू संस्कृति का प्रसाद अपने वंशज तथा मानव मात्र को मार्गदर्शन मिला,

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धंते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

जो पुरुष देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, और दान इन षट्कर्मों के करने में तल्लीन रहता है, जिसका कुल उत्तम है वह चूली, उखली, बुहारी आदि गृहस्थ की नित्य षट् आरम्भ क्रियाओं से होने वाले पाप से मुक्त हो जाता है वही उत्तम श्रावक कहलाता हैं।अभिवादन, विनम्रता, नित्य वृद्धजनों (अपने से श्रेष्ठजनों) की आदर सहित सेवा करने से चार चीजों की वृद्धि होती है- आयु, विद्या, सुयश एवं बल।'

न गृहेण गृहस्थः

अर्थात् केवल घर में रहने से ही कोई गृहस्थ नहीं होता, इसीलिए हमारी संस्कृति स्वरूपा नारी का आदर करने की प्रेरणा देते हुए शास्त्रों में कहा गया है :

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

अर्थात् जहाँ नारी की पूजा (आदर) होती है, वहां देवता सदैव रमण किया करते हैं और वह घर, सुख, समृद्धि, श्रीयुक्त होकर स्वर्ग बन जाता है। गृहस्थ अवस्था एक गृहस्थ को प्रेरणा दी गई- वह हिंसा, असत्य में न जाए। आत्महित साधते हुए वह हमेशा दूसरों के प्रति संवेदनशील, करुणाशील रहे। भागवतपुराण में काश्यप ऋषि अपनी पत्नी दिती को निर्देश देते हैं कि गर्भकाल के दौरान उसे किसी भी जीव को नहीं मारना चाहिए।

संदर्भ:

- संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, कोइलेन यूनिवर्सिटी एस राधाकृष्णन (1922), द हिंदू धर्म (द हिंदू धर्म), इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एथिक्स, 33(1): 1-22 (अंग्रेजी में)
- शर्मा, राजेंद्र के (2004). भारतीय समाज, संस्थाएँ और परिवर्तन (अंग्रेजी में)। नई: दिल्ली एंटाल्टिक. ओसीएलसी 61727709. आई०ऍस०बी०ऍन० 81-7156-665-0.
- साहेबराव गेनु विवरण (1986)। वेदों के प्रति स्वयंसिद्ध दृष्टिकोण (अंग्रेजी में)। नॉर्डन बुक सेंटर। पृष्ठ 110-114. आई०ऍस०बी०ऍन० 81-85119-18 -एक्स.
- मणिलाल बोस (1998)। "5. गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास"। प्राचीन भारत का सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास [प्राचीन भारत का सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास] (अंग्रेजी में)। कॉन्सेप्ट प्रकाशन कंपनी। प्रा० 68. आई०ऍस०बी०ऍन० 81-7022-598-1.
- एलएलटीआई (1995), भारत में परिवार: विश्वास और वास्तविकताएं, तुलनात्मक पारिवारिक अध्ययन जर्नल, 26(1): 11-25
- ऋग्वेद -मनुस्मृति: मनु के नियम 200-22.33.2
- म्यूसे, मार्क डब्ल्यू. (2011)। हिंदू परंपराएँ: एक संक्षिप्त परिचय (अंग्रेजी में)। किला प्रेस. पृ० 30-38. आई०ऍस०बी०ऍन० 978-1-4514-1400-4. अभिगमन तिथि 21 जनवरी 2021।
- ग्रिसवॉल्ड, एच.डी.; ग्रिसवॉल्ड, हर्वे डी विट (1971)। ऋग्वेद का धर्म. मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन. पृ० 1-21. आई०ऍस०बी०ऍन० 978-81-208-0745-7. अभिगमन तिथि 21 जनवरी 2021.

***

पुराणों में गार्हस्थ्य धर्म की महत्ता

डॉ. शैलकुमारी मिश्र

अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, अध्यक्ष साहित्य विभाग, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, गङ्गानाथ झा परिसर, आजाद उद्यान, इलाहाबाद-211002 (उ.प्र.)

पुराणों के सम्बन्ध कोई चाहे कुछ भी कहें उनमें लोक अवधारणाओं को कथा के माध्यम से जन सामान्य तक पहुँचाने की क्षमता है। सामान्य जन भले स्मृति के वचनों को सही से न समझ सकें, वेद के मन्त्रों का आशय ठीक-ठीक समझ न सकें किन्तु पुराणों की शैली में कही गयी बातें उनके मन को छू लेती है। पुराण की कथाओं के ऊपर चमत्कार तथा अतिरंजन का मुलम्मा चढा हुआ है जो लोक की शैली है, इस शैली की जवनिका को हटाकर जब हम अंदर प्रवेश करते हैं तो वहाँ ज्ञान का अक्षय भण्डार हमें मिलता है। यह ज्ञान वेदों तथा स्मृतियों में उक्त ज्ञान से पृथक् या नवीन नहीं है, बल्कि उसी परम्परा की सर्वसुलभ व्याख्या है। अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि यदि मनुस्मृति में यदि तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही है तो पुराण भी "चतुर्णामाश्रमाणां च गार्हस्थ्यं पुण्यदं स्मृतम्", कहता है। पुराण मित्रसम्मित उपदेशात्मकता भरपूर है, जहाँ कथाओं के माध्यम से हमें कल्याणमय पथ पर ले जाने के लिए सारा प्रपंच रचा गया है। पुराणों में वर्णित गार्हस्थ्य-धर्म यहाँ प्रस्तुत है।

भारतीय संस्कृति के अभ्युत्थान में पुराणों का महान् योगदान है। पुराणों में समग्र भारतीय संस्कृति तथा इतिहास समाहित है। भारतीय कोई भी शास्त्र पुराणों से बाहर नहीं है। स्कन्दपुराण के अनुसार जो विषय वेद या स्मृतियों में नहीं मिलती उनका उल्लेख पुराणों में प्राप्त होता है

यत्र दृष्टं हि वेदेषु तद् दृष्टं स्मृतिभिः किल।
उभाभ्यां यत्र दृष्टं हि तत्पुराणेषु गीयते॥

स्कन्द पुराण, रेवाखण्ड, 1.22.23.

भारतीय प्राचीन मनीषियों ने वेदों की तरह ही पुराणों को भी उपादेय स्वीकार किया है। नारद-पुराण भी यही बात कहता है-

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥

नारद पुराण, 2.14.16

पुरुषार्थ-चतुष्टय को मानवों का प्राप्त लक्ष्य बनाने में पुराणों ने सतत योगदान दिया है। भारत की आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक उन्नति का श्रेय भी पुराणों को ही है। पुराण उन समस्त वाङ्मय को अपने में समाहित करता है, जो मानव कल्याण तथा हित मानव हित के साधन है। हम भारतीयों की समग्र जीवन-पद्धति ही पुराण-आधारित है, यदि हम ऐसा कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी

भारतीय संस्कृति में सुदीर्घकालिक सुचिन्तक ऋषियों ने स्वस्थ एवं सुव्यवस्थित समाज निर्माण हेतु चार वर्णों एवं चार आश्रमों की व्यवस्था की थी, जिसमें

धार्मिक एवं सामाजिक आदि कारणों से 'गृहस्थाश्रम' को प्रमुखता दी गई थी। यहाँ प्रमुख कारण यह प्रतीत होता है कि अन्य तीन आश्रमों में इन्द्रिय-संयम के अभाव में पतन की आशंका उपस्थित होती है, किन्तु गृहस्थाश्रम में इसीलिए ऐसी संभावना कम होती है।

संभवत: महर्षि बौधायन एवं गौतम ने गृहस्थाश्रम का प्रमुखता से विधान किया है। उनके अनुसार गृहस्थाश्रम प्रजातन्त्र की अविच्छिन्न परम्परा के द्वारा सृष्टि का विस्तार करता है। (बौधायन धर्मसूत्र, 2.6.11.29, गौतम धर्मसूत्र, 1.3.35.) गुरुकुल में दीक्षान्त के अवसर पर आचार्य शिष्यों को **"प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः"** का उपदेश करते हैं। (तैत्तिरीय आरण्यक, 7.11)

पुराणों में सृष्टि-प्रक्रिया सन्दर्भ में ईश्वर को ही नर और नारी रूप में द्विधा विभक्त कहा गया है-

अर्द्धनारीश्वरवपुस्तेजसा ज्वलनोपमः।
स्वेच्छयाऽसौ द्विधाभूत: पृथक् स्त्री पुरुषः पृथक्।

लिङ्ग पुराण, 70.325

पद्म-पुराण कहता है-

पुण्यभार्याप्रयोगेण गार्हस्थ्यं सम्प्रजायते।

पद्म पुराण, 2.59.10.

पुराण विवाह के पश्चात् ही पुरुष को पूर्ण मानते हैं-

नरो हि गृहिणीहीनो अर्द्धदेह इति स्मृतः।

स्कन्द पुराण, 1.2.3.62.

पुमानर्द्धपुमांस्तावद् यावद् यावद् भार्यां न विन्दति।
तस्माद् यथाक्रमकाले कुर्याद् दारपरिग्रहम्।

भविष्य पुराण 1.6.12.

विवाह यथाक्रम अर्थात् समयानुसार होना चाहिये। वर्तमान में तो वर-कन्या की कोई आयु सीमा ही नहीं है। मनु जी ने तो के गृहस्थाश्रम की तुलना प्राणवायु से की है –

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥

मनुस्मृति, 3.77

ब्रह्म-पुराण भी इसी मत का पोषण करता है

भिक्षाभुजश्च ये केचित् परिवाड्ब्रह्मचारिणः।
तेप्यत्र प्रतितिष्ठन्ति गार्हस्थ्यं तेन वै परम्॥

ब्रह्मपुराण, 222.32

ऋषियों द्वारा ऋणत्रय की परिकल्पना भारतीय संस्कृति महती विशेषता है- देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण। इनका सम्बन्ध क्रमश: देवताओं की मानवों के प्रति अनुकम्पा, ऋषियों के द्वारा प्रदन्त ज्ञान तथा पितरों के द्वारा उत्पन्न शरीर से है। यज्ञानुष्ठानादि से देवऋण, ऋषि प्रदत्त ज्ञान का संरक्षण एवं संवर्धन के द्वारा ऋषि ऋण तथा विशुद्ध सन्तानोत्पत्ति द्वारा पितृ ऋण से मुक्ति पाने का विधान है। इस सन्दर्भ में मनुस्मृति का कथन है-

अधीत्य विधिवद् वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥

मनुस्मृति, 6.36

इसी कथन को ब्रह्मपुराण भी अनुमोदन करते हुए कहता है-

ऋणत्रयापनोदाय क्रियतां दारसंग्रहः।

ब्रह्मपुराण, 99.5

इसी पुराण के अनुसार अन्य तीनों आश्रम मुक्ति में सहायक या मुक्ति प्रदायक हैं, किन्तु गृहस्थाश्रम मुक्ति के साथ ही भुक्ति में भी सहायक होता है।

चतुर्णामाश्रमाणां च गार्हस्थ्यं पुण्यदं स्मृतम्।
तस्मात् भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवतीति मतिर्मम॥

ब्रह्म पुराण, 88.15

गृहस्थाश्रम में रहते हुए ही पति-पत्नी एक-दूसरे के पूरक होकर अनेक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक आदि सांसारिक दायित्वों का निर्वहन करते हैं। केवल पुरुष या नारी स्वयं में असमर्थ हैं। जैसा कि स्कन्द पुराण कहता है-

नरो हि गृहिणीहीनो अर्द्धदेह इति स्मृतः।

स्कन्द पुराण, 1.2.3.62.

आहार, निद्रा तथा भय के साथ ही कदम भी प्राणियों की सहज वृत्ति है। इसी सहज दुर्दम्य प्रवृत्ति को मर्यादित करने हेतु गृहस्थाश्रम की अनिवार्यता तथा श्रेष्ठता को हमारे ऋषियों एवं मनीषियों ने सम्यक् प्रतिपादित किया है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में समाज की अपनी कुछ सुगठित मर्यादाएँ थीं, सबका जीवन उन्हीं मर्यादाओं से बँधा था। जीवन के शाश्वत मूल्यों की सम्यक् पहचान की गई थी। इसके अन्तर्गत भौतिक सुखों की प्राप्ति की अनुमति तो दी गई है, किन्तु मर्यादाओं को तोड़ने की अनुमति कहीं भी नहीं दी गई है, यहाँ अधिकार एवं स्वतन्त्रता की शिक्षा तो दी गई है, किन्तु उच्छृंखलता का कोई स्थान नहीं है।

***

सनातन वचन

गृहस्थ का ब्रह्मचर्य

भार्यां गच्छन् ब्रह्मचारी ऋतौ भवति वै द्विजः।
ऋतवादी भवेन्नित्यं ज्ञाननित्यश्च यो नरः॥

जो केवल ऋतुकाल (ऋतुस्नान के बाद 16 दिनों के भीतर) में ही पत्नी के साथ समागम करता है, सदा सत्य बोलता और नित्यज्ञान में स्थित रहता है, वह द्विज सदा ब्रह्मचारी ही होता है।

महाभारत : शान्तिपर्व, 221.11-

गृहस्थ धर्म की आवश्यकता और कर्तव्य

आचार्या कीर्ति शर्मा
प्राध्यापक एवं ज्योतिषाचार्य, अध्यक्ष, ज्योतिष वेदवेदांग संस्कृत संस्थान, 82/71-72, प्रतापनगर सांगानेर, जयपुर

गृहस्थ-आश्रम कठिन परीक्षा का आश्रम है। विवाह के बाद से ही एक विशाल नदी को पार करने की उत्प्रेक्षा गृहस्थाश्रम से की जा सकती है, जहाँ पति-पत्नी तथा बच्चे होते हैं। माता-पिता के प्रति कर्तव्य, परिजन, कुटुम्ब, समाज तथा परिवार के प्रति कर्तव्यों का सिलसिला यही से आरम्भ होता है। इसके लिए हमारे स्मृतिकारों ने देश, काल तथा पात्र के अनुरूप व्यवस्था दी है जिससे हम सबके साथ ताल-मेल मिलाकर उस वेगवती नदी को पार कर सकें। यद्यपि आज विशेष रूप से शहरी जीवन में यह सारी अवधारणा ध्वस्त हो चुकी है। विडम्बना है कि बगल वाले फ्लैट में हुई मृत्यु की सूचना भी हमें कई दिनों के बाद मिल पाती है। यह ध्रुवीकरण हमारी परम्पराओं पर आघात पहुँचा रही है, हम एकाकी होते जा रहे हैं, जिसके कारण वर्तमान गार्हस्थ्य जीवन कठिनतर होता जा रहा है। अतः आज आवश्यकता है कि हम अपने आदर्शों का पालन करते हुए अपने जैविक तथा अजैविक वातावरण में घुल-मिल जायें ताकि हमारा एकाकीपन दूर हो। व्यष्टि को समष्टि में समाहित कर देना गार्हस्थ्य को सुन्दरतर बना देगा। हमारे स्मृतिकार इसका उपाय बतला गये हैं। उन उपायों का संकलन यहाँ हम देखें।

मानव जीवन के अस्तित्व के चार लक्ष्य माने गए हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। सर्वोत्तम लक्ष्य है, मोक्ष जिसे कई नामों से पुकारा जाता है जैसे मुक्ति, अमृतत्व, निःश्रेयस आदि। इसकी प्राप्ति के लिए व्यक्ति को निर्वेद एवं वैराग्य धारण करना चाहिए।

भारतीय ऋषियों ने अपने दिव्य दर्शन एवं प्रकाश के अनुसार आश्रमों के सिद्धान्त हमें प्रदान किए। ब्रह्मचर्य में व्यक्ति को अनुशासन एवं संकल्प के अनुसार रहना पड़ता था। उसे अतीत काल के साहित्यिक भंडार का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था। आज्ञाकारिता, सादा जीवन उच्चविचार के सद्गुण सीखने पड़ते थे। ब्रह्मचर्य के उपरांत व्यक्ति विवाह करता था। गृहस्थ बनता था। संसार के आनंद का उपभोग करके जीवन का उपभोग करता था। सन्तानोत्पत्ति करता था। अपनी पत्नी, संतान, मित्र सगे संबंधियों, पड़ोसियों के प्रति अपने कर्तव्य निभाने पड़ते थे। उपयोगी, परिश्रमी एवं योग्य नागरिक होता था। तथा एक कुल का संस्थापक होता था।

50 वर्ष की अवस्था के उपरान्त वानप्रस्थ और तत्पश्चात् संन्यास आश्रम ग्रहण करता था। जहाँ वह आत्मनिग्रही, तपस्वी एवं निरपराध जीवन बिताकर इसी जीवन में मोक्ष का लक्ष्य प्राप्त कर सकता था।

वर्ण का सिद्धान्त संपूर्ण समाज के लिए होता है, परन्तु आश्रम का सिद्धान्त मात्र व्यक्ति के लिए है। आश्रम सिद्धान्त यह है बताता है कि व्यक्ति का

आध्यात्मिक लक्ष्य क्या है उसे अपने जीवन किस प्रकार से चलना है अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे क्या-क्या तैयारी करनी है। निसंदेह आश्रम अवस्था हमारे ऋषियों की एक उत्कृष्ट धारणा थी।

भले ही वर्तमान समय में ये भली-भाँति क्रियान्वित नहीं की जा रही है, परंतु इसके उद्देश्य बड़े ही महान् और विशिष्ट थे। मनु, वशिष्ठ, दक्ष एवं विष्णु धर्मसूत्र गृहस्थाश्रम को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

प्राचीनतम वेद ऋग्वेद के मतानुसार विवाह का उद्देश्य था गृहस्थ होकर देवों के लिए यज्ञ करना तथा सन्तानोत्पति करना। शतपथ ब्राह्मण का मत हैं कि पत्नी पति की अर्धांगिनी है अतः जब तक व्यक्ति विवाह करके सन्तान उत्पत्ति नहीं करता तब तक वह पूर्ण नहीं है।

अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायते असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ तर्हि सर्वो भवति।

(शतपथ ब्राह्मण 5.2.1.10)

मनु का वचन है कि

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥

मनुस्मृति, 3.2.

अर्थात् तीनों वेद, दो वेद अथवा कम से कम एक वेद का क्रमशः अध्ययन कर अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।

इसी प्रकार गृहस्थरत्नाकरकार[1] म.म. चण्डेश्वर (14वीं शती) यम के वचन को उद्धृत किया है-

गुरुं वा समनुज्ञाय प्रदाय गुरुदक्षिणाम्।
सदृशानाहरेद्दारान् मातापितृमते स्थितः॥

गृहस्थ धर्म के आचार विचार बताते हुए याज्ञवल्क्य भी बताते हैं कि विद्याध्ययन की समाप्ति के पश्चात् गुरु को दक्षिणा प्रदान करके उनकी आज्ञा से स्नान कर शिष्य को ब्रह्मचर्य व्रत की समाप्ति करें। यहाँ स्नान शब्द का व्यवहार आया है। यही स्नान अध्ययनावस्था का सूचक है। इसी अर्थ में आज स्नातक (स्नान किया हुआ) शब्द प्रचलन में है।

गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायाद्वा तदनुज्ञया।
वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वा ह्युभयमेव वा॥

मनुस्मृति, 1.51

आगे याज्ञवल्क्य कन्या का लक्षण भी स्पष्ट करते हैं-

अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियं उद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्॥

मनुस्मृति, 1.52

अखण्डित ब्रह्मचर्य वाला स्नातक शुभ लक्षण वाली ऐसी कन्या के साथ विवाह करे, जो पूर्व में किसी दूसरे की न हुई हो, सुन्दरी हो, समान पिण्ड वाली न हो तथा उम्र में छोटी हो।

अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्।
पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा॥

मनुस्मृति, 1.53

कन्या को कोई रोग न हो, उसके भाई हो, समान प्रवर तथा गोत्र से भिन्न प्रवर तथा गोत्र की हो, मातृकुल से पाँचवीं पीढ़ी तथा पितृकुल से सातवीं पीढ़ी की संतान न हो।

यहाँ द्वितीय चरण में एक अन्य तथ्य भी है कि गोत्र भिन्न रहने पर भी यदि प्रवर समान हो अर्थात् प्रवर के प्रवर्तक ऋषि समान हो तथापि विवाह वर्जित होगा। जैसे वत्सगोत्र के पाँच प्रवर ऋषि हैं- और्व, च्यवन, भार्गव, जामदग्न्य और आप्लवान। सावर्ण गोत्र यद्यपि भिन्न है किन्तु उनके भी प्रवर्तक ऋषि हैं- सावर्ण, और्व, च्यवन, जामदग्न्य तथा आप्लवान। दोनों में चार ऋषि

1. म.म. चण्डेश्वर, गृहस्थरत्नाकर, कमलकृष्ण स्मृतितीर्थ (सं.), एसिय़ाटिक सोसायटी कोलकाता, 1928. पृ.5.

समान हैं अतः वत्स एवं सावर्ण गोत्र के बीच भी विवाह का निषेध किया गया है। म.म. चण्डेश्वर (14वीं शती) ने इसे स्पष्ट किया है-

यथा- वात्स्यसावर्णयोरौर्व्वादीनां पञ्चतया संज्ञया चौर्व्वादिरूपतया।[2]

महर्षि याज्ञवल्क्य सपिण्डा के बारे में वर्णन करते हुए कहा है की माता से लेकर उनके पिता (नाना), पितामह आदि की गणना से पाँचवी पीढ़ी तक और पिता से लेकर उनके पिता (दादा) पितामह आदि की गणना में सातवीं पीढ़ी तक सपिण्डा समझना चाहिए। उनके अनुसार विवाह के लिए ऐसा असपिण्डा कन्या का चयन करना चाहिए।

अपने घर पर वर को बुलाकर उसे यथाशक्ति अलंकृत कर अपनी कन्या प्रदान करना ब्राह्मण विवाह कहलाता है। समान वर्ण वाले वर कन्याओं के विवाह में कन्याओं के द्वारा गृह्यसूत्र की विधि के अनुसार वर का पाणिग्रहण अर्थात हाथ पकड़ना चाहिए । पिता, पितामह भ्राता अथवा सकुल्य तथा माता भी कन्यादान करने के अधिकारी है। यदि कन्यादान का अधिकारी समय पर कन्यादान न करे तो कन्या ऋतुमती हो जाने पर कन्यादान के अधिकारी करने के प्रति ऋतुकाल में एक भ्रूण हत्या का पाप लगता है। कन्या एक बार ही दी जाती है। इसलिए कन्या को एक बार देकर पुनः उसका अपहरण करने वाला चोरी के दंड के समान दंड का भागी होता है सौम्य सुशीला पत्नी का परित्याग करने पर पति दंडनीय है। किंतु दुष्ट पत्नी का परित्याग किया जा सकता है।

कलियुग के लिए विशेष व्यवस्था बताते हुए महर्षि की आज्ञा है कि यदि भी किसी कन्या का किसी वर के साथ मात्र वाग्दान किया गया हो और वर की मृत्यु हो जाए तो ऐसी कन्या को पुत्र प्राप्त करने का उपाय यह है कि कन्या का देवर या सगोत्र बड़ों की आज्ञा प्राप्त होने पर अपने सभी अंगों पर घृत लेप कर ऋतुकाल में तब तक कन्या के पास जा सकता है जब तक कन्या गर्भधारण न हो। गर्भधारण के पश्चात् भी यदि वह ऐसी कन्या के पास जाता है तो पतित माना जाता है। इस विधि से कन्या से उत्पन्न पुत्र मृत वर का क्षेत्रज पुत्र माना जाता है।

जो स्त्री व्यभिचरिणी है बहुत प्रयत्न करने पर व्यभिचार से विरत नहीं हो रही हो तो उसको अपने गर्हित जीवन के प्रति वैराग्य उत्पन्न करने के लिए अपने घर में ही रखते हुए समस्त अधिकारों से पृथक् कर उसे उतना ही भोजन देना चाहिए जितने से उसकी प्राणरक्षा हो सके और भूमि पर ही उसके शयन की व्यवस्था होनी चाहिए।

स्त्रियों को विवाह से पूर्व चंद्र ने शुचिता, गंधर्व ने मधुर वाणी और अग्नि ने सब प्रकार की पवित्रता प्रदान की है। इसलिए स्त्रियाँ पवित्र ही होती है। अतएव उनके लिए अतप प्रायश्चित्त की व्यवस्था है। परंतु इससे यह नहीं समझा जा सकता है कि स्त्रियों में दोष का संक्रमण नहीं होता है। यदि कोई स्त्री केवल मन से पर पुरुष की इच्छा करती है तो यह भी एक तरह का व्यभिचार ही है। ऐसा व्यभिचार यदि प्रकाश में न आया हो तो इससे उत्पन्न दोष का मार्जन स्त्री के ऋतुकाल में रजोदर्शन से हो जाता है।

जिस घर में पति-पत्नी के मध्य किसी भी प्रकार का विरोध नहीं हो उसे घर में धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्ग की अभिवृद्धि होती है। यदि पति अपनी स्त्री का परित्याग करता है तो उसे उस स्त्री को भरण पोषण के लिए अपनी संपत्ति का तृतीयांश दे देना चाहिए।

गृहस्थाश्रमी को प्रतिदिन विवाहाग्नि में अथवा संपत्ति विभाग के समय स्वयं लाई गई है। संस्कृत अग्नि में स्मार्तकर्म, विश्वेदेव आदि संपन्न करना चाहिए। श्रौतकर्मानुष्ठान अग्निहोत्र आदि वैतानाग्नि में

2. म.म. चण्डेश्वर, गृहस्थरत्नाकर, उपर्युक्त, पृ. 9.

"मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि।"

(तैत्तिरीय उपनिषत् : 1.11.)

माता बनें देवी, पिता हों देव। आचार्य को भी देव समझें अतिथि को भी देव मानें। कर्म हमेशा करें अनिन्दित। कुछ भी न करें इसके अतिरिक्त। हमारे अतीत के जो आदर्श चरित हैं उनका हम अनुकरण करें।

करना चाहिए। प्रातः सायं अवश्य करणीय कार्यों को शास्त्रीय विधि से संपन्न कर शुद्ध प्राप्त कर स्नान कर प्रातःकाल एवं सांयकाल सन्ध्योपासन करना चाहिए। अन्तर अग्नि में हवन करके समाहित चित्र से सूर्य देवता के मन्त्रों का जप करना चाहिए। इसके बाद गृहस्थाश्रमी विभिन्न प्रकार के शास्त्रों का अध्ययन करें। योग क्षेम आदि की सिद्धि के लिए उसको ईश्वर की उपासना करनी चाहिए। देवताओं और पितरों का तर्पण तथा पूजन करें।

तत्पश्चात् भूत, पितर, देव, ब्राह्मण, मनुष्य जातियों के लिए गृहस्थ बलिकर्म, स्वधा, होम, स्वाध्याय तथा अतिथि सत्कार करें। देवताओं के लिए अग्नि में हवन करना चाहिए। भूतबलि, स्वान, चांडाल एवं काक आदि के लिए पका हुआ अन्न भूमि पर दे। पितृगण एवं मनुष्यों को अन्न के सहित जल भी प्रदान करना चाहिए।

प्रतिदिन स्वाध्याय करें। केवल अपने लिए ही अन्नपाक न करें। अपने पितृगृह में रहने वाली विवाहिता स्त्री वृद्धा, गर्भिणी, व्याधिपीड़ित कन्या, अतिथि, सेवक को भोजन प्रदान कर गृहस्वामी और उसका पति शेष बचे हुए अन्न का भोजन करें। पंच प्राणाहुति देकर अन्न की निंदा न करते हुए भोजन ग्रहण करना चाहिए।

सायंकाल भी आए हुए अतिथि को लौटना नहीं चाहिए। इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है। भिक्षुक को सत्कारपूर्वक भिक्षा प्रदान करनी चाहिए। द्वार पर पधारे सभी को भोजन करवाना चाहिए। प्रतिवर्ष स्नातक, आचार्य एवं राजा की पूजा करनी चाहिए। ऐसे ही मित्र, जामाता, ऋत्विक् प्रतिवर्ष पूजनीय है। पथिक को अतिथि तथा वेद पारंगत को श्रोत्रिय कहा जाता है। ब्रह्मलोक की कामना करने वाले गृहस्थजनों के लिए ये दोनों ही मान्य है। गृहस्थ को वाणी, हाथ, पैर की चंचलता एवं अति भोजन से बचना चाहिए।

संतुष्ट श्रोत्रिय तथा अतिथि को विदा करते समय ग्राम की सीमा तक उनका अनुगमन करना चाहिए। गृहस्थ को अपने इष्ट मित्र एवं बन्धुओं के साथ दिन का शेष भाग व्यतीत करना चाहिए। तदनन्तर सांयकालीन संध्योपासना करके पुनः अग्निहोत्र करके ही भोजन ग्रहण करना चाहिए। तदनन्तर अपने सुबुद्ध भृत्यों के साथ बैठकर अपने हित का विचार करना चाहिए। प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में निद्रा का परित्याग कर धनादि से ब्राह्मण को संतुष्ट करें तथा वृद्ध, दुखी एवं भार ढोने वाले पथिकों को भली-भाँति मार्ग दिखाकर प्रसन्न करें।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, सोच, इंद्रिय-संयम दम, क्षमा, सरलता और दान सभी वर्गों के गृहस्थों के लिए धर्म का साधन है। भारतीय गृहस्थ केवल अपनी समृद्धि के लिए उत्तरदायी नहीं होता। वरन् संपूर्ण ब्रह्मांड की सुख समृद्धि के प्रति उसे उत्तरदायी होना होता है। इस दायित्व का निर्वहन गृहस्थ पंच महायज्ञों के द्वारा करता है।

इनके अतिरिक्त गृहस्थाश्रम में रहते हुए नित्य प्रति जाने अनजाने अनेक पाप करता है। उनसे निवृत्ति के लिए यज्ञ का विधान है। गृहस्थ अन्य समस्त आश्रमों की धुरी कहा जाता है। गृहस्थाश्रम का आधार परिवार है। परिवार वह स्थान है जहाँ से सामाजिक व्यवस्था संचालित होती है। सनातन के चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में मोक्ष तक पहुँचने का आधार भी गृहस्थाश्रम है।

***

गृहस्थ के कर्तव्य पर जैनमत में हेमचन्द्राचार्य के विचार

आचार्य हेमचन्द्र

[वि. सं. १२९४ की ताड़पत्र-प्रति के आधार पर]

कलिकाल-सर्वज्ञ नाम से प्रसिद्ध हेमचन्द्राचार्य के योगशास्त्र के अनुसार गृहस्थों के 35 नियम हैं-

(1) न्याय से धन कमाना,

(2) शिष्ट पुरुषों के आचार की प्रशंसा, अनुकरण,

(3) विवाह सम्बन्ध अपने कुल तथा समान शील किन्तु भिन्न गोत्र में,

(4) पाप से डरना,

(5) देशाचार का पालन,

(6) राजा या अन्य की निदा नहीं,

(7) बिल्कुल खुला या गुप्त स्थान में घर नहीं हो,

(8) घर से बाहर निकलने के बहुत द्वार नहीं हों,

(9) सदाचारी मनुष्यों की संगति,

(10) माता पिता की सेवा,

(11) अशान्त या विवाद वाले स्थान में नहीं रहे,

(12) निन्दनीय काम की प्रवृत्ति नहीं करे,

(13) आय अनुसार व्यय,

(14) अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार वस्त्र पहने,

(15) बुद्धि के 8 गुणों से युक्त हो कर धर्म श्रवण करे। बुद्धि के 8 गुण हैं- श्रवण की इच्छा, श्रवण, ग्रहण, धारण, चिन्तन, अपोह (उलटा तर्क), अर्थ ज्ञान, तत्त्व ज्ञान।

(16) अजीर्ण (अनपच) होने पर भोजन नहीं करे,

(17) नियत समय पर सन्तोष सहित भोजन,

(18) 4 पुरुषार्थों-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का सेवन इस प्रकार करे कि किसी को बाधा नहीं हो,

(19) अतिथि, साधु, दीन का यथायोग्य सत्कार,

(20) दुराग्रह नहीं करना,
(21) गुण की प्रशंसा और उसका ग्रहण,
(22) देश-काल के विपरीत आचरण नहीं करे-नियम कानून का पालन,
(23) अपनी शक्ति और अशक्ति को समझ कर ही काम करे,
(24) सदाचारी तथा ज्ञानी की भक्ति करे,
(25) जिनका दायित्व अपने ऊपर है, उनका पालन करे,
(26) दीर्घदर्शी-आगे पीछे का सोच कर काम करे,
(27) अपने हित-अहित को समझे,
(28) कृतज्ञ हो,
(29) लोकप्रिय हो, सामाजिक सेवा आदि,
(30) अनुचित काम में लज्जा,
(31) दयालु,
(32) सौम्य और शान्त रहे,
(33) परोपकार में पीछे नहीं हटे,
(34) काम क्रोध आदि 6 शत्रुओं का त्याग। ये 6 शत्रु हैं- काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य।
(35) इन्द्रियों को वश में रखे।

न्यायसम्पन्नविभवः शिष्टाचारप्रशंसकः। कुलशीलसमैः सार्द्धं कृतोद्वाहोऽन्यगोत्रजैः॥47॥
पापभीरुः प्रसिद्धञ्च देशाचारं समाचरन्। अवर्ण्णवादी न क्वापि राजादिषु विशेषतः॥48॥
अनतिव्यक्तगुप्ते च स्थाने सुप्रातिवेश्मिके। अनेकनिर्गमद्वारविवर्जितनिकेतनः॥49॥
कृतसङ्गः सदाचारैः माता-पित्रोश्च पूजकः। त्यजन्नुपप्लुतं स्थानं अप्रवृत्तश्च गर्हिते॥50॥
व्ययमायोचितं कुर्वन् वेषं वित्तानुसारतः। अष्टभिर्धीगुणैर्युक्तः शृण्वानो धर्ममन्वहम्॥51॥
अजीर्णे भोजनत्यागी काले भोक्ता च सात्म्यतः। अन्योप्न्याऽप्रतिबन्धेन त्रिवर्गमपि साधयन्॥52॥
यथावदतिथौ साधौ दीने च प्रतिपत्तिकृत्। सदाऽनभिनिविष्टश्च पक्षपाती गुणेषु च॥53॥
अदेशाकालयोश्चर्यां, त्यजन् जानन् बलाबलम्। वृत्तस्थज्ञानवृद्धानां पूजकः पोष्यपोषकः॥54॥
दीर्घदर्शी विशेषज्ञः कृतज्ञो लोकवल्लभः। सलज्जः सदयः सौम्यः परोपकृति कर्मठः॥55॥
अन्तरङ्गारिषड्वर्ग - परिहार - परायणः। वशीकृतेन्द्रियग्रामो गृहिधर्माय कल्पते॥56॥

(योगशास्त्र, 1.47-56)

-संकलन एवं अनुवाद

श्री अरुण कुमार उपाध्याय, भारतीय पुलिस सेवा (अ. प्रा.)सी-/47, (हवाई अड्डा के निकट) पलासपल्ली, भुवनेश्वर।

जैनमत में सागारधर्म की परिभाषा

ईसा की 13वीं शती के पूर्वार्द्ध में जैनमत के विद्वानों में पं. आशाधर का नाम आदर के साथ लिया जाता है। इनके लिखे 20 ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमें अनागारधर्मामृत तथा सागारधर्मामृत तथा उनकी स्वोपज्ञ टीका जैनमत के आचारों का पूर्णतः संकलन है। संस्कृत में लिखे ये ग्रन्थ पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। अनागारधर्मामृत मे जैन यतियों के आचार संकलित हैं तो दूसरे में आगार यानी गृह में रहने वाले श्रावकों-गृहस्थों के आचारों का संकलन है। यह ग्रन्थ सिद्धान्ताचार्य पं. कैलासचन्द्र त्रिपाठी के सम्पादन में भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन से 1978ई. में प्रकाशित है। इसमें सागारधर्मामृत (मूल), उसकी ग्रन्थकार द्वारा ही की गयी ज्ञानदीपिका नामक व्याख्या तथा सम्पादक द्वारा हिन्दी अनुवाद प्रकाशित है, जिसके कारण ग्रन्थ अत्यधिक स्पष्ट है। वस्तुतः सागारधर्मामृत 10वें अध्याय से 17वें अध्याय तक है, जिसे द्वितीय खण्ड कहा गया है। इसके आरम्भ में 11वें श्लोक में सागारधर्म यानी गृहस्थधर्म की परिभाषा दी गयी है। इस एक श्लोक की व्याख्या का भी हिन्दी अनुवाद यहाँ पाठकों के लिए उद्धृत किया गया है। इसके अवलोकन से हम देखते हैं कि जैनमत में भी ऐसी कोई विशेष बात नहीं है, जो सनातन की परम्परा में नहीं कही गयी हो। अन्ततः सभी भारतीय परम्परा की आधारशिलाएँ ही तो हैं!

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् सद्गीस्त्रिवर्गं भज-
न्योन्यानुगुणं तदर्हगृहिणीस्थानालयो ह्रीमयः।
युक्ताहारविहारआर्यसमितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी
शृण्वन् धर्मविधिं दयालुरघभीः सागारधमं चरेत् ॥11॥

न्यायपूर्वक धन कमानेवाला, गुणों, गुरुजनों और गुणों से महान गुरुओं को पूजने वाला, आदर, सत्कार करने वाला, परनिन्दा, कठोरता आदि से रहित प्रशस्त वाणी बोलने वाला, परस्पर में एक दूसरे को हानि न पहुँचाते हुए धर्म, अर्थ और काम का सेवन करने वाला, धर्म, अर्थ और कामसेवन के योग्य पत्नी, गाँव, नगर और मकान वाला, लज्जाशील, शास्त्रानुसार खानपान और गमनागमन करनेवाला, सदाचारी पुरुषों की संगति करने वाला, विचारशील, पर के द्वारा किये गये उपकार को माननेवाला, जितेन्द्रिय, धर्म की विधि को प्रतिदिन सुनने वाला, दयालु और पापभीरु पुरुष गृहस्थ धर्म को पालन करने में समर्थ होता है॥ 11॥

विशेषार्थ- प्रथम श्लोक की टीका में ही ग्रन्थकार ने कहा है कि जो मुनिव्रत धारण करने की इच्छा रखते हुए भी अपनी कमजोरी और परिस्थिति के कारण उसे धारण करने में असमर्थ हैं वे सागारधर्म का पालन करते हैं। और जिन्हें मुनिधर्म की इच्छा ही नहीं है उनका सागारधर्म भी पूर्ण नहीं है। इससे स्पष्ट है कि सागारधर्म का पालन करना भी कितना कठिन है।

उसके पालन के लिए जिन बातों की आवश्यकता है उन्हें यहाँ बतलाते हैं। सबसे प्रथम न्यायपूर्वक धन

कमाना आवश्यक है। यदि नौकरी करते हैं तो मालिक को धोखा देकर धन कमाना अन्याय है। यदि किसी मित्र के साथ कार-बार करते हैं तो मित्र के साथ धोखा करना अन्याय है। इसी तरह जो अपना विश्वास करता है उसके साथ विश्वासघात करना अन्याय है। और चोरी से धन कमाना तो अन्याय है ही। इन सब अन्यायों से बचकर जो सदाचार है वही न्याय है। इस न्याय से जो धन कमाता है वही श्रावकधर्म के पालन का यथार्थ में अधिकारी है। क्योंकि न्याय से अर्जित धन इस लोकमें हितकर होता है। उसके देन-लेन में किसी प्रकारका भय नहीं होता। आनन्दपूर्वक उसका उपभोग किया जा सकता और अपने बन्धु बान्धवों तथा इष्ट-मित्रों को दिया जा सकता है। तथा परलोकके लिए सत्पात्रोंको तथा दीन-दुखियोंको दान किया जाता है। अन्यायका धन तो दोनों ही लोकों में अहितकारी होता है। इस लोकमें लोकविरुद्ध कार्य करनेसे सरकार से दण्ड मिलता है और परलोक में दुर्गति मिलती है। इसके सिवाय अन्याय से कमाया हुआ धन अधिक समय तक नहीं ठहरता, बल्कि पूर्वसंचित द्रव्य को भी साथ में ले जाता है। कहा है- 'अन्याय से उपार्जित धन दस वर्ष तक ठहरता है। ग्यारहवाँ वर्ष लगते ही मूलके साथ नष्ट हो जाता है। जैसे मछली को फाँसने के काँटे में लगा मांस अपने साथ मछली को भी ले मरता है उसी तरह धन के राग से अन्धा हुआ मनुष्य अपने पाप से ही उस फल को पाता है।' न्यायी मनुष्य का पशु-पक्षी भी विश्वास करते हैं। अन्यायी से तो सहोदर भाई भी दूर हो जाता है। कहा है- 'न्यायी की सहायता पशु-पक्षी भी करते हैं और कुमार्गगामी को सहोदर भाई भी छोड़ देता है।'

यद्यपि किसी अन्यायी के पापानुबन्धी पुण्यकर्म के उदय से इस लोक में विपत्ति नहीं देखी जाती तथापि परलोक में विपत्ति अवश्य आती है। कहा है- 'अपनी दृष्टि विलास-लीला पटलसे आच्छादित होने के कारण जो सामने स्थित परलोक के मार्ग को नहीं देख पाते उन मुग्धबुद्धियों का घोर अन्धकूपरूपी नरक में पतन समीप ही है।'

परमार्थ से धन कमाने का उपाय न्याय ही है। कहा है- जैसे मेढक जलाशय में और मछलियाँ भरे तालाब में आकर बसती हैं वैसे ही समस्त सम्पदा विवश होकर शुभकर्म का अनुसरण करती हैं। न्याय से उपार्जित धन ही पुरुषार्थ की सिद्धि में सहायक होता है। वैभव गृहस्थाश्रम में प्रधान कारण है, इसलिए सर्वप्रथम उसीका निर्देश किया है॥ 1॥

2. अपना और पराया उपकार करनेवाले सौजन्य, उदारता, दानशीलता, स्थिरता, प्रेमपूर्वक वार्तालाप

करना आदि आत्मधर्मो को गुण कहते हैं। तथा लोकापवाद से डरना, दीनोंके उद्धार में आदरभाव, कृतज्ञता, उदारता आदिको सदाचार कहते हैं। इनका बहुमान करना, प्रशंसा करना, इन गुण वालों की सहायता करने आदि के रूप में अनुकूल प्रवृत्ति को पूजा कहते हैं। शिष्टाचार की प्रशंसा ही उसकी पूजा है। यथा- 'घोर विपत्ति में स्थिरता, महान् पुरुषों के पदों का अनुसरण, न्यायपूर्वक आजीविका, प्राण जाने पर भी मलिनता का न आना, दुर्जनों की अभ्यर्थना न करना, गरीब मित्र से भी याचना न करना, यह सज्जन पुरुषों का विषम असिधाराव्रत किसने कहा है।

तथा माता, पिता, आचार्य आदि गुरु कहे जाते हैं। गृहस्थ को उनका भी पूजक होना चाहिए । उनमें से माता-पिता की पूजा तीनों सन्ध्याओं में उन्हें प्रणाम करना, इस लोक और परलोक में हितकारी अनुष्ठानों में लगना, उनकी आज्ञा से ही सब काम करना, घर के लिए आवश्यक वर्ण-गन्ध-पुष्प फल आदि तथा नया अन्न आदि लाना, यह सब उनकी पूजा है। आचार्यपूजा का कथन तो पूर्व में विनय के वर्णन में किया जा चुका है। आगे भी कहेंगे। मनु ने भी कहा है- 'सन्तान को जन्म देने में माता-पिता जो कष्ट सहते हैं उसका मूल्य सैकड़ों वर्षों में भी नहीं चुकाया जा सकता। उपाध्याय से दस गुणा आचार्य का आचार्य से सौ गुना पिता का और पिता से हजार गुना माता का गौरव है। आचार्य, पिता, माता, बड़ा भाई इनकी अवमानना नहीं करना चाहिए।' तथा जो ज्ञान, संयम आदिसे महान् हैं उनकी सेवा, हाथ जोड़ना, उन्हें आसन देना, उनके सामने उठकर खड़े होना आदि से सम्मान करना चाहिए। क्योंकि जो ज्ञान और संयम से सम्पन्न हैं उनकी पूजा करने पर नियम से वे कल्पवृक्ष के समान सदुपदेशरूप फल प्रदान करते हैं।

3. गृहस्थ की वाणी परनिन्दा, कठोरता आदि दोषोंसे रहित होना चाहिए, परके अपवादमें बहुत दोष है। कहा है- 'दूसरे की निन्दा और अपनी प्रशंसा से नीच गोत्र कर्म का ऐसा बन्ध होता है जो करोड़ों भवों में भी नहीं छूटता।' तथा उसके त्याग में अनेक गुण हैं। कहा है- 'यदि तू जगत् को एक ही कार्य के द्वारा वशमें करना चाहता है तो अपनी वाणीरूपी गौ को परनिन्दारूपी धान्य को चरने से बचा'।

4. धर्म, अर्थ और काम को त्रिवर्ग कहते हैं। जिससे सांसारिक अभ्युदयपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति होती है उसे धर्म कहते हैं। जिससे समस्त प्रयोजन सिद्ध होते हैं उसे अर्थ कहते हैं। और जिससे सब इन्द्रियों की तृप्ति होती है उसे काम कहते हैं। गृहस्थ को इन तीनों का ही सेवन इस प्रकार करना चाहिए कि एक से दूसरे में बाधा न आवे अर्थात् एक-एक का सेवन न करके तीनों- का ही अपने-अपने समयपर सेवन करना चाहिए। जो धर्म और अर्थ की परवाह न करके बनैले हाथी की तरह विषयसुख में आसक्त रहता है वह किन आपत्तियोंका शिकार नहीं होता। जिसकी कामसेवन में अति आसक्ति होती है उसका धन, धर्म और शरीर नष्ट हो जाते हैं। जो धर्म और काम की परवाह न करके केवल धन कमाने में ही लगा रहता है उसके धन को दूसरे भोगते हैं और वह स्वयं पाप का भाजन बनता है। इसी तरह धन और कामभोग की परवाह न करके केवल धर्मसेवन करना तो मुनियों का ही धर्म है गृहस्थोंका नहीं। किन्तु धर्म में बाधा डालकर अर्थ और काम का सेवन नहीं करना चाहिए; क्योंकि बीज के गेहूँ को भी खा डालनेवाले किसान की तरह अधार्मिक पुरुष का भविष्य में अकल्याण ही होता है। सुखी ही होता है जो पारलौकिक सुख का विरोध न करते हुए इस लोक में सुख भोगता है। इसी तरह धन कमाने की चिन्ता न करके जो धर्म और काम का सेवन करता है वह कर्जदार हो जाता है। जो कामसेवन से विमुख

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् सद्गीस्त्रिवर्गं भज-
न्योन्यानुगुणं तदर्हगृहिणीस्थानालयो ह्रीमयः।
युक्ताहारविहारआर्यसमितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी
शृण्वन् धर्मविधिं दयालुरघभीः सागारधमं चरेत् ॥11॥

होकर केवल धर्म और अर्थ का उपार्जन करता है उसका गार्हस्थ्य समाप्त हो जाता है। अतः गृहस्थ को त्रिवर्ग में बाधा डालना उचित नहीं है। किन्तु यदि दैववश बाधा पड़े तो उत्तरोत्तर की बाधा में पूर्व-पूर्व की बाधा रक्षणीय है। अर्थात् काम के सामने धर्म और अर्थ में बाधा उपस्थित हो उसे पहले दूर करना चाहिए क्योंकि धर्म और धन के रहनेपर कामसुख सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। काम और अर्थ के सामने धर्म की बाधा होनेपर उसे पहले दूर करना चाहिए क्योंकि अर्थ और काम का मूल धर्म है।

5. पत्नी, नगर या ग्राम और घर गृहस्थधर्म के अनुकूल होने चाहिए। पिता, पितामह आदि पूर्व पुरुषों के वंश को कुल कहते हैं और मद्य, मांस आदि के त्याग को शील कहते हैं। जिनका कुल और शील अपने समान हो उनके वंश की कन्या का अग्नि और देव आदि की साक्षीपूर्वक पाणिग्रहण को विवाह कहते हैं। विवाह का फल शुद्ध पत्नी की प्राप्ति है। यदि पत्नी ठीक न हो तो जीवन नरक हो जाता है। योग्य पत्नी के मिलने से अच्छी सन्तान प्राप्त होती है, चित्त प्रसन्न रहता है, घर के कार्य सुन्दर रीति से सम्पन्न होते हैं, कुलीनता और आचारविशुद्धि का संरक्षण होता है, देव-अतिथि और बन्धु-बान्धवों के सत्कार में बाधा नहीं आती।

जनक ने सीता को उपदेश देते हुए कहा था- 'स्वामी के घर आने पर स्त्री को खड़ा होना चाहिए। उसके भाषण में नम्रता होनी चाहिए। दृष्टि उसके चरणों पर होनी चाहिए। उसके बैठनेपर स्वयं उसकी सेवा करनी चाहिए। उसके सो जाने पर सोना चाहिए और उसके जागने से पहले शय्या त्याग देना चाहिए। हे पुत्रि! विद्वानोंने ये कुल-वधू के धर्म कहे हैं। तथा सास की सेवा, बन्धुजनों में स्नेहशीलता, परिचारकों में वात्सल्य, पत्नियों में सौहार्द, पति के मित्रोंसे विनयपूर्ण वचनालाप और पति के शत्रुओं से अप्रीति ये सब पति को अपना बनाने की औषध है।' और भी कहा है- 'जो सबसे पहले जागती है, और समस्त परिवार के सो जाने पर सोती है, सबके भोजन करनेपर स्वयं भोजन करती है। वह गृहिणी है।' घर के व्यापार में गृहिणी, सुरत में वेश्या, गुरुजनों के बीच में वधू, परिजनों के मध्य में सखी और परिजनों के अभाव में मन्त्री और सेवक के तुल्य जो हो वह गृहिणी है।

योग्य पत्नी के साथ स्थान और घर भी योग्य होना चाहिए। स्थान न तो एकदम खुला ही होना चाहिए और न एकदम गुप्त ही होना चाहिए। अत्यन्त खले स्थान में पास में किसी का वास न होने से चोरों आदि का भय रहता है। अत्यन्त गुप्त होनेपर एक तो मकान की अपनी शोभा नहीं रहती, चारों ओर से मकानों के जमघट में वह छुप जाता है। दूसरे आग वगैरह की

दुर्घटना होनेपर आने-जाने में कठिनाई होती है। तथा पड़ोसी शीलसम्पन्न होने चाहिए। यदि पड़ोसी कुशील हों तो उनकी बातों के सुनने और उनकी चेष्टाओं के देखने से अपने भी गुणों की हानि होती है। अतः अच्छे पड़ोस में मकान होना आवश्यक है।

6. तथा गृहस्थ को निर्लज्ज नहीं होना चाहिए, लज्जाशील होना चाहिए। लज्जा गुणों की जननी है। लज्जाशील व्यक्ति प्राण भले ही छोड़ दे किन्तु अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता।

7. आहार-विहार युक्त होना चाहिए। यदि अजीर्ण हो, पहले किया भोजन पचा न हो तो नया भोजन नहीं करना चाहिए। अजीर्ण में भोजन करनेपर अजीर्ण में वृद्धि होगी और अजीर्ण सब रोगोंकी जड़ है। अत: भूख लगनेपर मित भोजन करना चाहिए। कहा है- 'जो मित भोजन करता है वह बहुत भोजन करता है। बिना भूख के अमृत भी खाने पर विष होता है।

आहार करने के समय का प्रविधान करते हुए कहा है- 'जब मल मूत्र का त्याग कर दिया हो, हृदय निर्मल हो, वात पित्त कफ अपने योग्य हो, भूख लगी हो, वायु का निःसरण ठीक हो, अग्नि प्रज्वलित हो, शरीर हलका हो तब भोजन करना चाहिए। वही भोज नका काल माना गया है।' अजीर्ण में भोजन नहीं करना चाहिए। अजीर्ण रोगों की जड़ है। मलवायु में दुर्गन्ध, मल का कड़ा होना, शरीर में भारीपन, अरुचि और डकार में खटास ये सब अजीर्ण के लक्षण हैं।' अत: भूख लगनेपर हित, मित और सात्म्य भोजन करना चाहिए।

कहा है- सर्वदा उचित मात्रा में भोजन करना चाहिए। भोजन की उचित मात्रा अग्नि को उद्दीप्त करती है। भोज्य हलका हो या भारी हो, मात्रा का ध्यान रखना आवश्यक है। जितना सुखपूर्वक पच सके वही मात्रा है। प्रकृति विरुद्ध भी खान-पान यदि सुखकारक हो तो उसे सात्म्य कहते हैं। अविधि पूर्वक भोजन आधि व्याधि और मरण कारक होता है। कहा है- अयुक्त भोजन व्याधि और मरणके लिए होता है। इसी तरह जो अविधि पूर्वक विहार करता है उसका अनिष्ट अवश्यंभावी होता है।

गृहस्थ को सदाचारी पुरुषों की संगति करनी चाहिए, धूर्त और बदमाशों की नहीं। उनकी संगति से शील नष्ट होता है। कहा है- यदि उन्नति के मार्गमें जाना चाहते हो तो मिथ्यादृष्टियों, कुपथगामियों, मायावियों, व्यसनियों और दुर्जनों की संगति छोड़कर उत्तम पुरुषों की संगति करो। गृहस्थ को प्राज्ञ होना चाहिए अर्थात् उसे अपने और दूसरों के द्रव्य, क्षेत्र काल भावकृत सामर्थ्य और असामर्थ्य का ज्ञान होना चाहिए। उसके ज्ञानपर ही सब कार्य सफल होते हैं, अन्यथा तो विफल होते हैं। कहा है- यदि शक्ति के अनुसार व्यायाम किया जाये तो प्राणियों के अंगों की वृद्धि होती है और बल को विचारे बिना कार्य करने से विनाश होता है।'

इस प्रकार के ज्ञान को ही प्रज्ञा कहते हैं। तथा दीर्घदर्शी होना चाहिए जो दीर्घकाल में होनेवाले अर्थ अनर्थ का विचार करता है उसे दीर्घदर्शी कहते हैं। यह भी प्रज्ञा ही है क्योंकि प्रज्ञा को त्रिकालवर्ती अर्थगत कहा है। तथा जो वस्तु-अवस्तु के, कृत्य-अकृत्य के अपन-पराये के विशेष अन्तर को जानता है उसे विशेषज्ञ कहते हैं। जो पुरुष विशेषज्ञ नहीं है वह पशु से भिन्न नहीं है। अथवा जो आत्मा के हो गुण दोषों पर आरोहण करने रूप विशेष को जानता है वह विशेषज्ञ है। कहा है- 'मनुष्य को प्रतिदिन अपने चरित का निरीक्षण करना चाहिए कि वह पशुओं के तुल्य है या सत्पुरुषों के तुल्य है।' यह भी प्रज्ञा ही है अतः प्रज्ञा कहना उचित है। कहा है- यह फल है, यह क्रिया है, यह करण है, यह क्रम है, यह आनुषंगिक हानि लाभ है, मेरी यह दशा है, अमुक मेरा मित्र और अमुक मेरा शत्रु है, ये उचित देश काल है, ऐसा विचार बुद्धिमान ही

करता है दूसरा नहीं करता।'

तथा गृहस्थ को कृतज्ञ होना चाहिए- दूसरेके द्वारा किये गये उपकार को मूलना या छिपाना नहीं चाहिए। इससे यह लाभ है कि उपकार करने वाले उसका बहुमान करते हैं। कृतघ्न का तो उद्धार ही सम्भव नहीं है। कहा है- हत्या करनेवाले, मद्यपायी, चोर और व्रतभंग करनेवाले का तो उद्धार सम्भव है किन्तु कृतघ्न का उद्धार सम्भव नहीं है। आज के समयमें कृतज्ञ पुरुष दुर्लभ हैं। कहा है- 'जो उपकार करने का उत्साह रखते हैं वे तो कुछ हैं भी। किन्तु जो उपकार को स्मरण रखते हैं उनसे यह पृथ्वी बांझ है।' जो कृतज्ञ होता है वह लोगों को प्रिय होता ही है। कहा है- 'यदि तुम पृथ्वी को अपने वश में करना चाहते हो तो कृतज्ञ बनो। जो सब गुणों से युक्त होते हुए भी कृतघ्न होता है सब लोग उससे घृणा करते हैं'।

तथा गृहस्थ को 'वशी' होना चाहिए। अर्थात् इष्ट वस्तुमें अनासक्तिके साथ तथा विरुद्ध वस्तुमें भी प्रवृत्ति न करके स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके विकार को रोकनेवाला और अन्तरंग छह शत्रुओं के निग्रहमें तत्पर होना चाहिए। अयुक्ति से प्रयुक्त काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष ये शिष्ट गृहस्थों- के छह अन्तरंग शत्रु हैं। दूसरे की विवाहित या अविवाहित स्त्री में दुर्भाव को काम कहते हैं। अपने या दूसरेके अपाय का विचार न करके कोप करना क्रोध है। दान के योग्य को भी अपना धन न देना या अकारण पराया धन ग्रहण करना लोभ है। दुष्ट अभिप्राय को अथवा युक्त बात को भी ग्रहण न करना मान है। कुल, बल, ऐश्वर्य, रूप, विद्या आदि का अहंकार करना मद है। बिना कारण के दूसरों को दुःखी करनेसे अथवा स्वयं जुआ, शिकार आदि अनर्थका आश्रय लेने में मनका प्रमुदित होना हर्ष है। ये सब अपाय का कारण होने से त्याज्य हैं।

तथा अभ्युदय और मोक्ष के हेतु धर्म की विधि को युक्ति और आगम से उसके स्थापना को सुनने वाला होना चाहिए। कहा है- जो भव्य जीव मेरा कल्याण किसमें है ऐसा विचारता हुआ दुःख से अत्यन्त डरता है सुख को चाहता है, दयागुणमय सुखकारी धर्म को सुनकर युक्ति और आगम से उसकी स्थिति का विचार करता है। धर्मकथा सुनता है उसे ग्रहण करता है और आग्रह नहीं रखता, वह प्रशंसनीय है। तथा दयालु होना चाहिए, दुःखी का दुख दूर करने की इच्छा रूप दया का पालक होना चाहिए; क्योंकि धर्मका मूल दया है। कहा है- 'जैसे हमें अपने प्राण प्रिय हैं उसी तरह अन्य प्राणियों को भी हैं यह मानकर मनुष्य को सब प्राणियों पर दया करना चाहिए।' तथा धर्म का सार सुनना चाहिए और सुनकर उसे अवधारण करना चाहिए। जो बात स्वयं अपने को अच्छी नहीं लगती वह दूसरों के प्रति भी नहीं करना चाहिए। जो आजीविका के अभाव से, व्याधि और शोक से पीड़ित हैं। शक्ति के अनुसार उनकी सहायता करना चाहिए और कोट चींटी आदि को भी अपने समान देखना चाहिए।' अपकारी शत्रु का भी उपकार करना चाहिए। इत्यादि आचार भी दयामें ही जानना। तथा गृहस्थ को चोरी मद्यपान आदि पापों से डरते रहना चाहिए। ऐसे गृहस्थ को श्रावक धर्म अर्थात् विकल चारित्र पालना चाहिए। कहा है- चारित्र दो प्रकार का है- सकल चारित्र और विकल चारित्र। समस्त परिग्रह से रहित अनागार मुनियों के सकल चारित्र होता है और परिग्रही गृहस्थों के विकल चारित्र होता है॥ 11॥

***

लोकगाथा

पीपल का एक पत्ता टूटने का दण्ड

महामुनि अष्टावक्र ब्रह्मचर्य आश्रम के पूर्ण होने पर दीक्षान्त पाकर सीधे दण्ड, कमंडलु तथा छत्र लेकर संन्यास आश्रम में प्रवेश कर गये। वे रास्ते पर जा रहे थे तो उनके छत्र से लगकर पीपल का एक पत्ता टूटकर जमीन पर गिर पड़ा। पीपल का पत्ता अभी ताजा था, उसके टूटने का समय नहीं आया था लेकिन अष्टावक्र के छत्र से लगकर बलात् टूट गया।

वे जीवन भर संन्यास का पालन करते हुए विविध प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर उच्च कोटि के मोक्ष के अधिकारी बने। किन्तु उनकी मृत्यु हुई तो यमराज ने उनके कृत्यों का लेखा-जोखा सुनाया और पूछा कि पहले आप दण्डफल का भोग करेंगे या पुण्यफल का?

अष्टावक्र को आश्चर्य हुआ। जीवन भर वे पुण्यकर्म ही करते रहे थे तो फिर यह पापकर्म कैसा! उन्होंने मन में सोचा कि थोड़ा-सा होगा, तो पहले पापकर्म का ही दण्ड क्यों न भोग लूँ।

उन्होंने अपना अभिमत दिया कि पहले दण्डफल ही हो जाये, मैं तैयार हूँ।

यमराज ने सजा सुनायी- आपको पृथ्वी पर बैल के रूप में तबतक बारबार जन्म लेना होगा जबतक 101 जुआ (बैलों के कंधे पर रखी जाने वाली लकड़ी) नहीं टूट जाती है।

यमराज सजा सुना चुके थे तो उसका पालन तो करना ही था। उन्होंने एक ब्राह्मण के घर बैल के रूप में जन्म लिया। खाने-पीने की कोई समस्या नहीं थी। ब्राह्मण स्वयं उन्हें हल में जोतता था। परिश्रम जो करना पड़े, लेकिन अपमानित नहीं होते थे।

एक दिन वह ब्राह्मण इन्हें हल में जोत कर बीच खेत में खड़ा कर पीपल के पेड़ की एक डाली काटने चला गया। इसे देखकर बैल बने अष्टावक्र ठहाका लगाकर हँस पड़े। उनकी हँसी इतनी तीव्र थी कि आसपास के सभी किसान घबड़ाकर भाग खड़े हुए। सारे लोग डर के मारे खेत छोड़कर भाग गये। यहाँ तक कि उसके साथ जुता हुआ दूसरा बैल भी डर के मारे भाग गया। बैल की काया में अष्टावक्र

वहीं खड़े रहे। पेड़ की डाली काटते हुए ब्राह्मण ने समझा कि इस पीपल पर रहने वाला कोई यक्ष हँस पड़ा है, तो अपनी जान बचाने के लिए वह अपने बैल के पास भागा। उसे विश्वास था कि गो-पुत्र की शरण में जाने पर कोई भय नहीं रहता। उसने जाकर बैल की गरदन पकड़ ली। तब उसे मालूम हुआ कि उसी का एक बैल हँस रहा है।

उसने बैल से हँसने का कारण पूछा तो उस बैल ने कहा कि अभी मैं कुछ नहीं बतलाऊँगा। पहले मेरा एक कहना मानो। मैं साबा पहर के लिए मृत हो जाऊँगा हूँ। तब तक मेरे शरीर की रक्षा तुम्हें करनी होगी कि कोई शरीर को घायल न करे। उसके बाद में फिर जीवित हो जाऊँगा और तुम्हारे सभी प्रश्नों का उत्तर दे दूँगा। अभी जो कहता हूँ वह करो। मैं तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगा।

वह ब्राह्मण बेचारा क्या करे, उसने बात ली। उसने दोनों बैलों को खोल दिया। अष्टावक्र ने जिस बैल का स्वरूप धारण किया था, वह बैल मर गया।

बैल के शरीर से छुट कर अष्टावक्र सीधे यमराज के दरबार में पहुँचे और उन्होंने यमराज को फटकार लगायी - "मेरे छत्र से अनजान में लगकर एक पत्ता टूटा तो मुझे 101 जुआ टूटने तक बैल की योनि में जन्म लेना पड़ा। इस ब्राह्मण ने तो पूरी डाल काट दी है, इसकी क्या सजा आपके पास है?"

यमराज ने शान्त भाव से कहा- "शायद इसकी सजा इसके द्वारा किए गये पुण्यों से घटकर शून्य हो जाये। हाँ, पुण्य थोड़ा घट जायेगा।"

अष्टावक्र फिर बिफर उठे- "मैंने संन्यास धारण कर इतना बड़ा तप किया, मैं मोक्ष का अधिकारी हूँ, क्या मेरा पुण्य उस एक पीपल के पत्ते के टूटने की सजा को शून्य बनाने में समर्थ नहीं?"

यमराज ने कहा- "ऐसा मैं नहीं सोचता हूँ। पहले आप उस गृहस्थ ब्राह्मण का फल समझें। उसकी खेत पर पीपल की शाखा से छाया पड़ रही थी। उतनी भूमि अन्न उपजाने में असमर्थ थी। उसने डाल काट दी। अब वहाँ अन्न उपजेगा। खेत में अबाध रूप से पशु, पक्षी, की, पिपीलिका को भोजन मिलेगा। लाखों की संख्या में कीट उस अन्न से अपना पोषण करेंगे। इतने जीवों को अन्न देने का फल तो उसे मिलना ही चाहिए। उस फसल को काटकर वह किसान घर ले जायेगा। पहले देवी-देवताओं को अर्पित करेगा, फिर उसके बच्चे खाएँगे। खाने के बाद अवशिष्ट अन्न से कीड़े-मकौड़े अपना पोषण करेंगे। सभी तो जीव हैं, उसी ईश्वर की सृष्टि है। ईश्वर की सृष्टि के पोषण के कारण उस गृहस्थाश्रमी किसान के पुण्यों का लेखा-जोखा अंतहीन है। और सुनिए अष्टावक्रजी महाराज! कि सच्चाई तो यह है कि यदि कोई गृहस्थ अपने कर्तव्यों का पालन करता हुआ, केवल दान देता हुआ, संसार के भरण-पोषण में लगा रहता है, तो हमारे चित्रगुप्त महाराज उसके सभी पुण्यों का लेखा-जोखा न लेखकर 'अनन्त' लिख देते हैं, क्योंकि यदि सभी पुण्य एक-एक कर लिखे जायें तो हमारी पंजी ही भर जायेगी। इस प्रकार अनन्त

पुण्य में से इस प्रकार से सभी छोटे-छोटे पाप घट कर शून्य हो जाते हैं!"

अष्टावक्र हतप्रभ थे। वे हारकर धरती पर लौट आये। मरा हुआ बैल फिर से जीवित हो उठा। उन्होंने किसान ब्राह्मण से सारी बातें कही।

ब्राह्मण तो सन्न रह गया। उसे चिन्ता सताने लगी कि मैं अष्टावक्र जैसे महात्मा से काम कराया। वह उनके पैरों पर गिर पड़ा और रोने लगा।

अष्टावक्र ने कहा कि रोने से काम नहीं चलेगा। मुझे तो जो दण्ड मिला है उसे भोगना ही है और इसमें तुम्हारी क्या गलती है? हाँ, यदि मेरी मुक्ति का कोई उपाय हो तो वह करना चाहिए।

ब्राह्मण ने कहा कि 101 जुआ टूटना चाहिए, यही न दण्ड है! जुआ कैसा हो इसका तो कोई उल्लेख है नहीं। तब तो यह मेरे लिए आसान उपाय है। मैं बैल का मालिक हूँ, जैसा जुआ लगाऊँ, मेरी मर्जी! तो मैं आपकी मुक्ति के लिए उपाय खोजता हूँ। कल ही आपके कंधे पर 101 जुआ टूट जाएँगे और आपको मुक्ति मिल जाएगी।

वह ब्राह्मण दोनों बैलों को लेकर घर आ गया। उसने बढ़ई को बुलाया और अंडी की लकड़ी से उसने 101 जुआ बनबाया। बढ़ई ने सोचा कि यह ब्राह्मण पागल हो गया है, लेकिन पूछने की हिम्मत नहीं हुई। फिर उसे क्या, उसे तो पारिश्रमिक मिल ही रहा था।

अलगे दिन वह ब्राह्मण सारा जुआ लेकर खेत पर पहुँचा। एक-एक कर जुआ बैलों के कंधे पर लगाता गया। बैल आगे बढ़ते भी नहीं थे कि जुआ टूट जाता था। अंडी की लकड़ी ऐसी ही कोमल होती है, जरा सा खटका लगते ही दो टूक हो जाती है। आखिरकार 101 जुआ थोड़ी ही देर में टूट गया।

अब अष्टावक्र दण्डभोग से मुक्त हो चुके थे उन्होंने ब्राह्मण को जमकर आशीर्वाद दिया और बैल की काया छोड़कर यमराज के आदेशानुसार मोक्षधाम को चले।

***

पुराण-वचन

गृहस्थों के लिए प्राचीन उपनिषत्

धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत दद्यात्सदैवातिथीन् भोजयेच्च।
अनाददानश्च परैरदत्तं सैषा गृहस्थोपनिषत् पुराणी॥

धर्म का आचरण करते हुए उससे प्राप्त धन द्वारा यज्ञ करना चाहिए, दान तथा अतिथियों को भोजन कराना चाहिए। विना दी गई किसी दूसरे की वस्तु नहीं लेनी चाहिए। गृहस्थों के लिए यहीं प्राचीन उपनिषत् है।

-मत्स्यपुराण : 40.3.

बौद्धमत में गृहस्थों के कर्तव्य

(सिगालोवाद-सुत्त)

बौद्धमत भी अपने अपने उत्कर्ष काल में सामान्य जनता के बीच प्रसिद्ध रहा। बहुत सारे गृहस्थ भी नगरों तथा गाँवों में इसका अनुपालन करते रहे। फलतः बौद्ध तिपिटक में अनेक स्थलों पर गृहस्थों के लिए उपदेश किए गये हैं। सुत्त निपात के धम्मिअ सुत्त में भी गाथा संख्या 18 से 29 तक गृहस्थों के लिए कटिनता से अनुपालनीय धर्मों का वर्णन किया गया है। वहाँ आरम्भ में ही कहते हैं कि न हेसो लब्भा सपरिग्गहेन, यानी उसका पालन सपरिग्रही (गृहस्थ) से नहीं किया जा सकता है। वास्त वें वहाँ भी गृहस्थ धर्म का पालन ही कहा गया है, जिनमें मुख्यतः हिंसा, चोरी, परस्त्रीगमन, मिथ्या बोलना आदि का परिहार किया गया है। इसी प्रकार दीघ निकाय के 31वें सुत्त सिङ्गाल, सिगाल या सिगालोवाद सुत्त में गृहस्तों के लिए व्यावहारिक उपदेश किए गये हैं। उन्हें समझाया गया कि हम गृहस्थ के रूप में भी क्लेशों का नाश कैसे करते हैं, माता, पिता, गुरु, समाज, भाई-बन्धु, मित्र, दास आदि के प्रति हम अपना व्यवहार कैसे रखें। साथ ही मृत पूर्वजों के प्रति भी हमारे कर्तव्य बनते हैं। माता-पिता के निमित्त श्राद्ध करने का भी उपदेश यहाँ किया गया है। यहाँ बुद्ध कहते हैं कि प्रातःकाल केवल छह दिशाओं को प्रणाम करना ही काफी नहीं हैं हमारे माता-पिता, गुरु, भृत्य आदि हमारी दिशाएँ हैं जो हमें सुरक्षित रखते हैं उनके प्रति दायित्वों का पालन करमे से हमारी दिशाएँ सुरक्षित रहेंगी और हमारा गार्हस्थ्य जीवन सुरक्षित रहेगा। यहाँ राहुल सांकृत्यायन का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है।

गृहस्थ के कर्तव्य

(इहलोक और परलोक की विजय)

1. चार कर्म-क्लेशों का नाश।
2. चार पाप के स्थान।
3. छै सम्पत्ति के नाश के कारण।
4. मित्र और अमित्र।
5. छै दिशाओं की पूजा।

ऐसा मैने सुना- एक समय भगवान् राजगृहमे, वेणुवन कलन्दकनिवापमे विहार कर रहे थे। उस समय शृगाल (= सिगाल) गृहपति-पुत्र (= वैश्य का लड़का) सवेरे उठकर राजगृहसे निकल भींगे-वस्त्र, भीगे-केश, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर और नीचे सभी दिशाओं को हाथ जोड़ नमस्कार करता था। तब भगवान् पहिनकर पात्रचीवर ले राजगृह में भिक्षा के लिये प्रवेश करने चले। भगवान् ने शृगाल गृहपति पुत्रको सबेरे उठकर दिशाओ को हाथ जो नमस्कार करते देखा। देखकर शृगाल गृहपति-पुत्र से यह कहा-

"गृहपतिपुत्र! क्यों तू सबेरे उठकर दिशाओं को नमस्कार कर रहा है?"

"भन्ते! (स्वामी) मरते वक्त पिताने मुझसे कहा था - 'तात! दिशाओं को नमस्कार करना।' सो भन्ते! पिता के वचन का सत्कार= गुरुकार, मान= पूजा करते, सवेरे उठकर दिशाओं को नमस्कार कर रहा हूँ।"

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता की 1119ई.में तैयार की गयी पाण्डुलिपि से चित्र। इसे नेपाल के चित्रकार ने तैयार किया था। सम्प्रति The Cleveland Museum of Art, U.S. में संरक्षित।

साभार : https://archive.org/

गृहस्थ के कर्तव्य

"गृहपति पुत्र! आर्यधर्म में छै दिशाओं को नमस्कार इस प्रकार नही किया जाता।"

"अच्छा हो, भन्ते। भगवान् मुझे वैसे धर्म का उपदेश करे, जैसे कि आर्य-धर्म में छै दिशाओं को नमस्कार किया जाता है।"

"तो गृहपति पुत्र! सुन, अच्छी तरह मन में कर कहता हूँ।"

"अच्छा, भन्ते।" - (कह) शृगाल गृहपति-पुत्र ने भगवान् को उत्तर दिया।

इहलोक और परलोक की विजय-

भगवान् ने यह कहा— "जब गृहपति-पुत्र! आर्य श्रावक (आर्य धर्मानुयायी शिष्य) के (1-4) चार कर्म-क्लेश (= कर्म के मल) नष्ट हो गये रहते है, (5-8) चार स्थानों से वह पापकर्म नही करता; (9-14) वह छै अपाय (-हानि) के मुखों का सेवन नही करता, वह इस प्रकार चौदह पापों से दूर हो, छै दिशाओं को आच्छादित कर दोनों लोकों के विजय में लगता है, तो उसका यह लोक भी सुसेवित होता है और परलोक भी वह काया छोड़ मरने के बाद सुगति स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है।

1 - चार कर्म-क्लेशों का नाश

"कौन से उसके चार कर्म-क्लेश नष्ट हो गये रहते हैं? —

(1) गृहपति-पुत्र! प्राणि-मारना कर्म-क्लेश है,

(2) चोरी (= अदत्तादान) कर्म-क्लेश है,

(3) काम (= स्त्री - ससर्ग) संबधी दुराचार कर्म-क्लेश है,

(4) झूठ बोलना कर्म-क्लेश है।

ये चार कर्म-क्लेश उसके नष्ट हो गये रहते है।"

भगवान् ने यह कहा। यह कहकर सुगत शास्ता ने यह भी कहा- "प्राणातिपात, अदत्तादान, मृषावाद (जो) कहा जाता है और परदारगमन (इनकी) पंडित जन प्रशसा नही करते॥ 1॥

2 - चार स्थानोंसे पाप नहीं करना

ख. "किन चार स्थानों से पापकर्म को नही करता?

(1) छन्द (= राग) के रास्ते में जाकर पापकर्म करता है।

(2) द्वेष के रास्ते में जाकर पापकर्म करता है।

(3) मोह के जाकर पापकर्म करता है।

(4) भय के रास्ते जाकर पापकर्म करता है।

चूँकि गृहपति-पुत्र! आर्य श्रावक न छन्द के रास्ते जाता है, न द्वेष के 0, न मोहके 0, न भय के 0। (अतः) इन चार स्थानों से पाप-कर्म नही करता। - भगवान् ने यह कहा।

यह कहकर शास्ता सुगत ने फिर यह भी कहा-

"छन्द, द्वेष, भय और मोह से जो धर्मका अतिक्रमण करता है। कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की भाँति, उसका यश क्षीण होता है॥2॥

छन्द, द्वेष, भय और मोह से जो धर्म का अतिक्रमण नही करता। शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति, उसका यश बढता है॥3॥

3. छै सम्पत्ति के नाश के कारण

ग "कौन से छे भोगों के अपायमुख (= विनाश के कारण) हैं-

(1) शराब नशा आदि का सेवन।

(2) विकाल (= सध्या) मे चौरस्ते की सैर (= विसिखा चरिया) में तत्पर होना।

(3) समज्या (= समाज- नाच-तमाशा) का सेवन।

(4) जुआ, (और दूसरी) दिमाग — बिगाड़ने की चीजें ..।

(5) बुरे मित्र (= पाप-मित्र) की मिताई

(6) आलस्यमे फँसना

1- नशा- "गृहपति-पुत्र! शराब नशा आदिके सेवनमे दुष्परिणाम है।

(1) तत्काल धन की हानि।

(2) कलह का बढ़ना।

(3) (यह) रोगों का घर है।

(4) अयश उत्पन्न करनेवाला है।

(5) लज्जा का नाश करनेवाला है। और छठे

(6) बुद्धि (= प्रज्ञा) को दुर्बल करता है।

2. चौरस्ते की सैर— " गृहपति पुत्र! विकाल में चौरस्ते की सैर के छे दुष्परिणाम है-

(1) स्वय भी वह अ-गुप्त= अ-रक्षित होता है।

(2) उसके स्त्री- पुत्र भी अ-गुप्त= अरक्षित होते है।

(3) उसकी धन सम्पत्ति भी अरक्षित होती है।

(4) बुरी बातों की शंका होती है।

(5) झूठी बात उसपर लागू होती है।

(6) (वह) बहुत से दुःखकारक कामों का करनेवाला होता है।

3. नाच-तमाशा- "गृहपति पुत्र। समज्याभिचरणमे छै दोष (= आदिनव) हैं-

(1) (आज) कहाँ नाच है (इसकी परेशानी)।

(2) कहाँ गीत है?

(3) कहाँ वाद्य है?

(4) कहाँ आख्यान है?

(5) कहाँ पाणिस्वर (- हाथ से ताल देकर नृत्य-गीत) है?

(6) कहाँ कुम्भ- थूण (= वादन-विशेष) है?

4. जुआ - " गृहपति -पुत्र! द्यूत प्रमादस्थान के व्यसनमे छै दोष हैं -

(1) जय (होनेपर) वैर उत्पन्न करता है।

(2) पराजित होनेपर (हारे) धन की सोच करता है।

(3) तत्काल धनका नुकसान।

(4) सभामे जानेपर (उसके) वचन का विश्वास नही रहता।

(5) मित्रो और अमात्यों द्वारा तिरस्कृत होता है।

(6) शादी-विवाह करनेवाले- यह जुवारी आदमी है, स्त्रीका भरण-पोषण नही कर सकता- सोच, (कन्या देने में) आपत्ति करते हैं।

5- दुष्ट की मिताई- "गृहपति-पुत्र! दुष्ट मित्र की मिताई के छै दोष होते हैं जो

(1) धूर्त,

(2) शौण्ड,

(3) पियक्कड़ (=पिपासु),

(4) कृतघ्न,

(5) वंचक और

(6) गुण्डे (- साहसिक, खूनी) होते हैं, वही इसके मित्र होते है।

6-आलस्य - "गृहपति पुत्र! आलस्य में पड़ने में यह छै दोष हैं-

(1) '(इस समय) बहुत ठंडा है' (सोच) काम नही करता।

(2) 'बहुत गर्म है'- (सोच) काम नहीं करता।

(3) 'बहुत शाम हो गई' (सोच) 0।

(4) ' बहुत सबेरा है' 0।

(5) 'बहुत भूखा हूँ"0।

(6) बहुत खाये हूँ' इस प्रकार बहुत-सी करणीय बातों को (न करनेसे) अनुत्पन्न भोग उत्पन्न नही होते, और उत्पन्न भोग नष्ट हो जाते है।

भगवान् ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगत ने फिर यह भी कहा-

'जो (मद्य) पान मे सखा होता है, (सामने ही), प्रिय बनता है, (वह मित्र नही) जो काम हो जानेपर भी, मित्र रहता है, वही सखा है॥4॥

अति-निद्रा, परस्त्री गमन, वैर उत्पन्न करना, और अनर्थ करना, बुरे की मित्रता, और बहुत कंजूसी, यह छै मनुष्य को बर्बाद कर देते है॥5॥

पाप-मित्र (बुरे मित्रवाला), पाप- सखा और पापाचार मे अनुरक्त, मनुष्य इस लोक और पर (लोक) दोनों ही से नष्ट-भ्रष्ट होता है॥ 6॥

जुआ, स्त्री, वारुणी, नृत्य-गीत, दिन की निद्रा अ-समय की सेवा, बुरे मित्रों का होना, और बहुत कजूसी, यह है मनुष्यको बर्बाद कर देते है॥7॥

(जो) जुआ खेलते हैं, सुरा पीते है, पराई प्राण-प्यारी स्त्रियो (का गमन करते है), पंडितका नही, नीचका सेवन करते है, (वह) कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा -जैसे क्षीण होते है॥8॥

जो वारुणी (-रत), निर्धन, मुहताज, पियक्कड़, प्रमादी (होता है), (जो) पानी की तरह ऋण मे अवगाहन करता है, (वह) शीघ्र ही अपने को व्याकुल करता है॥9॥

दिनमे निद्राशील, रात के उठने को बुरा माननेवाला, सदा (नशा मे) मस्त= शौण्ड गृहस्थी (= घर-आवास) नही चला सकता॥ 10॥

'बहुत शीत है', 'बहुत उष्ण है', 'अव बहुत सध्या हो गई, इस तरह करते मनुष्य धन-हीन हो जाते है॥ 11॥

जो पुरुष काम करते शीत-उष्णको तृणसे अधिक नही मानता। वह सुखसे वचित होनेवाला नही होता॥ 12॥

4 - मित्र और अमित्र

क. मित्र रूप में अमित्र- "गृहपति-पुत्र! इन चारों को मित्र के रूपमे अमित्र (= शत्रु) जानना चाहिये-

(1) पर-धनहारक को मित्र रूप मे अमित्र जानना

चाहिये।

(2) केवल बात बनाने वाले को0।

(3) (सदा) प्रिय वचन बोलने वाले को0।

(4) अपाय (- हानिकर कृत्यों में) सहायक को0।

गृहपति-पुत्र!

1. पर-धनहारक — "चार बातों से पर धन-हारक को0।

(1) (वह) -पर-धन-हारक होता है,

(2) थोड़े (धन) द्वारा बहुत (पाना) चाहता है।

(3) भय (= विपत्ति) का काम करता है,

(4) और स्वार्थके लिये सेवा करता है॥13॥

2. बातूनी- "गृहपति-पुत्र! चार बातों से वचीपरम (- केवल बात बनानेवाले) को0-

(1) भूत (कालिक वस्तु) की प्रशंसा करता है।

(2) भविष्य की प्रशसा करता है।

(3) निरर्थक (बात) की प्रशंसा करता है!

(4) वर्तमान के काममें विपत्ति दिखलाता है।

3. खुशामदी- "गृहपति-पुत्र! चार बातों से प्रियभाणी (= जी हुजूर) को0। -

(1) बुरे काम में भी अनुमति देता है

(2) अच्छे काम में भी अनुमति देता है।

(3) सामने तारीफ करता है। और

(4) पीठ पीछे निन्दा करता है।

4. नाश में सहायक- "गृहपति पुत्र! चार बातों से अपाय -सहायक को0-

(1) सुरा, मैरेय, मद्य-पान (जैसे) प्रमाद के काम मे फँसने में साथी होता है।

(2) बेवक्त चौरस्ता घूमने मे साथी होता है।

(3) समज्या देखनेमे साथी होता है।

(4) जुआ खेलने (जैसे) प्रमाद के काम में साथी होता है।

भगवान् ने यह कहकर, फिर यह भी कहा-

'पर-धन-हारी मित्र, और जो वचीपरम मित्र है। प्रिय भाणी मित्र और जो अपायों मे सखा है॥14॥

यह चारो अमित्र है, ऐसा जानकर पंडित पुरुष, खतरे वाले रास्ते की भाँति (उन्हें) दूरसे ही छोड़ दे॥15॥

ख. मित्र -

"गृहपति-पुत्र! इन चार मित्रों को सुहृद् जानना चाहिये-

(1) उपकारी मित्र को सुहृद् जानना चाहिये।

(2) सुख दुःख को समान भोगने वाले मित्र को 0।

(3) अर्थ (की प्राप्ति का उपाय) बतलाने वाले मित्र को 0।

(4) अनुकंपक मित्र को0।

1. उपकारी - "गृहपति पुत्र! चार बातों से उपकारी मित्र को सुहृद् जानना चाहिये-

(1) प्रमत्त (= भूल करनेवाले) की रक्षा करता है।

(2) प्रमत्त की संपत्ति की रक्षा करता है।

(3) भयभीत का रक्षक (शरण) होता है।

(4) काम पड़ जानेपर, उसे दुगना लाभ उत्पन्न करवाता है।

2. समानसुखदुःखी- "गृहपति पुत्र! चार बातों से समान - सुख-दुख मित्र को सुहृद् जानना चाहिये-

(1) इसे गोप्य (बात) बतलाता है।

(2) इसकी गोप्य-बात को गुप्त रखता है।

(3) आपत् में इसे नही छोड़ता

(4) इसके लिये प्राण भी देने को तैयार रहता है।

3. हितवादी- "गृहपति-पुत्र! चार बातों से अर्थ-आख्यायी (= हितवादी) मित्र को सुहृद् जानना चाहिये-

(1) पाप का निवारण करता है।

(2) पुण्य का प्रवेश कराता है।

(3) अ-श्रुत (विद्या) को श्रुत करता है।

(4) स्वर्ग का मार्ग बतलाता है।

4. अनुकम्पक- "गृहपति-पुत्र! चार बातों से अनुकंपक मित्र को सुहृद् जानना चाहिये-

(1) मित्र के (धन-संपत्ति) होनेपर खुश नही होता।

(2) न होनेपर भी खुश नही होता।

(3) (मित्र की) निन्दा करनेवाले को रोकता है।

(4) प्रशंसा करनेपर प्रशंसा करता है।

यह कहकर .. फिर यह भी कहा-

"जो मित्र उपकारक होता है, सुख-दुखमे जो सखा (बना) रहता है, जो मित्र हितवादी होता है, और जो मित्र अनुकपक होता है॥ 16॥

यही चार मित्र है, बुद्धिमान् ऐसा जानकर, सत्कार-पूर्वक माता-पिता और पुत्र की भाँति उनकी सेवा करे॥17॥

सदाचारी पडित मधुमक्खी की भाँति भोगों को संचय कर, प्रज्वलित अग्नि की भाँति प्रकाशमान होता है। (उसके) भोग (= संपत्ति) जैसे वल्मीक बढता है, वैसे बढते है॥18॥

इस प्रकार भोगों का सं चयकर अर्थ सपन्न कुलवाला (जो) गृहस्थ, चार भाग में भोगों को विभाजित करे, वही मित्रों को पावेगा॥19॥

एक भाग को स्वयं भोगे, दो भागों को काम में लगावे। चौथे भाग को आपत्काल में काम आनेके लिये रख छोड़े॥20॥

5- छै दिशाओं की पूजा

"गृहपति-पुत्र! यह छै दिशायें जाननी चाहिये।

(1) माता-पिता को पूर्व दिशा जानना चाहिये।

(2) आचार्यों को दक्षिण दिशा जानना चाहिये।

(3) पुत्र-स्त्रीको पश्चिम दिशा0।

(4) मित्र-अमात्यों को उत्तर दिशा0।

(5) दास-कमकर को नीचे की दिशा0।

(6) श्रमण-ब्राह्मणों को ऊपर की दिशा0।

1. माता पिता की सेवा- "गृहपति-पुत्र! पाँच तरह से माता-पिता का प्रत्युपस्थान (= सेवा) करना चाहिये -

(1) (इन्होंने मेरा) भरण-पोषण किया है, अतः मुझे (इनका) भरण-पोषण करना चाहिये।

(2) (मेरा काम किया है, अतः) मुझे इनका काम करना चाहिये।

(3) (इन्होंने कुल-वंश कायम रक्खा, अतः) मुझे कुल-वंश कायम रखना चाहिये।

(4) (इन्होंने मुझे दायज्ज= वरासत दिया, अतः) मुझे दायज्ज प्रतिपादन करना चाहिये।

(5) मृत प्रेतों के निमित्त श्राद्ध-दान देना चाहिये।

इस प्रकार पाँच तरह से सेवित (माता-पिता) पुत्र पर पाँच प्रकार से अनुकंपा करते है।

(1) पाप से निवारित करते हैं।

(2) पुण्य में लगाते है।

(3) शिल्प सिखलाते है।

(4) योग्य स्त्री से संबन्ध कराते हैं।

(5) समय पाकर दायज्ज निष्पादन करते हैं।

गृहपति-पुत्र! इन पाँच बातों से पुत्र द्वारा माता-पिता -रूपी पूर्वदिशा का प्रत्युपस्थान होता है। इस प्रकार इस (पुत्र) की पूर्वदिशा प्रतिच्छन्न (= ढँकी, सुरक्षित) क्षेम-युक्त, भय रहित होती है।

2. आचार्य की सेवा- "गृहपति पुत्र (माता-पिता) पुत्र पर पाँच पाँच बातों मे शिष्य को आचार्य-रूपी दक्षिण दिशा का प्रत्युपस्थान करना चाहिये।

(1) उत्थान (= तत्परता) से,

(2) उपस्थान (= हाजिरी= सेवा) से,

(3) शुश्रूषा से,

(4) परिचर्या = सत्संग से,

(5) सत्कार-पूर्वक शिल्प सीखने से।

गृहपति-पुत्र! इस प्रकार पाँच बातों मे शिष्य द्वारा आचार्य सेवित हो, पाँच प्रकार से शिष्य पर अनुकपा करते हैं-

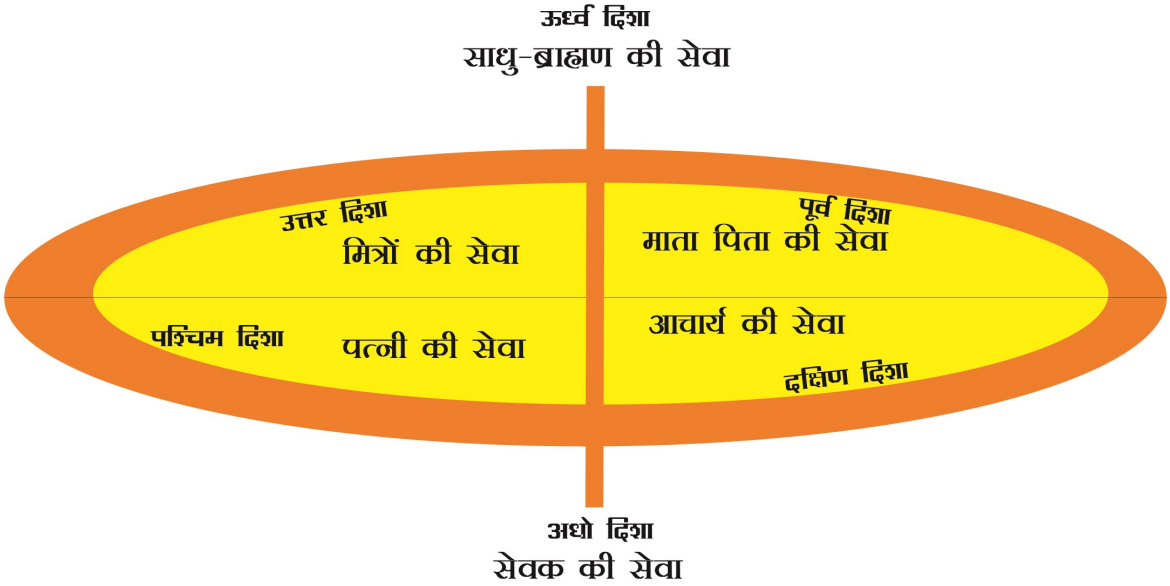

(1) सु-विनय से युक्त करते है।

(2) सुन्दर शिक्षा को भली प्रकार सिखलाते है।

(3) 'हमारी (विद्यायें) परिपूर्ण रहेगी' सोच सभी शिल्प सभी श्रुत (= विद्या) को सिखलाते हैं।

(4) मित्र-अमात्यों को सुप्रतिपादन करते हैं।

(5) दिशा की सुरक्षा करते हैं।

3. पत्नी की सेवा- "गृहपति-पुत्र! पाँच प्रकार से स्वामी को भार्या रूपी पश्चिम दिशा का प्रत्युपस्थान करना चाहिये-

(1) सन्मान से,

(2) अपमान न करने से,

(3) अतिचार (पर-स्त्री-गमन आदि) न करने से,

(4) ऐश्वर्य-प्रदान से,

(5) अलंकार- प्रदान से।

गृहपति-पुत्र! इन पाँच प्रकारों से स्वामी द्वारा भार्या रूपी पश्चिम दिशा का प्रत्युपस्थान होनेपर, (वह) स्वामी पर पाँच प्रकार से अनुकपा करती है-

(1) (भार्या द्वारा) कर्मान्त (= काम-काज) भली प्रकार होते हैं।

(2) परिजन (नौकर-चाकर) वश में रहते है।

(3) (स्वयं) अतिचारिणी नही होती।

(4) अर्जित की रक्षा करती है।

(5) सब कामों मे निरालस और दक्ष होती है।

4. मित्रों की सेवा- "गृहपति पुत्र! पाँच प्रकार से मित्र अमात्य रूपी उत्तर दिशा का प्रत्युपस्थान करना चाहिये -

(1) दान से,

(2) प्रिय-वचन से,

(3) अर्थ-चर्या (काम कर देने) से,

(4) समानता (प्रदर्शन) से,

(5) विश्वास-प्रदान से।

गृहपति पुत्र! इन पाँच प्रकारों से प्रत्युपस्थान की गई मित्र-अमात्यरूपी उत्तर दिशा, पाँच प्रकार से (उस) कुल-पुत्र पर अनुकपा करती है-

(1) प्रमाद (= भूल, आलस्य) कर देने पर रक्षा करते है।

(2) प्रमत्त की संपत्ति की रक्षा करते हैं।

(3) भय के समय शरण (= रक्षक) होते हैं।

(4) आपत्काल में नही छोड़ते।

(5) दूसरी प्रजा (लोग) भी (ऐसे मित्र-अमात्यवाले) इस पुरुष का सत्कार करती है।

5. सेवक की सेवा- "गृहपति पुत्र! पाँच प्रकार से आर्यक (मालिक) को दास-कर्मकर रूपी निचली-दिशा का प्रत्युपस्थान करना चाहिये -

(1) बल के अनुसार कर्मान्त (= काम) देने से,

(2) भोजन-वेतन (भत्ते-वेतन)-प्रदान से,

(3) रोगि-शुश्रूषा से,

(4) उत्तम रसों (वाले पदार्थों) को प्रदान करने से,

(5) समय पर छुट्टी (= वोसग्ग) देनेसे।

गृहपति पुत्र! इन पाँचो प्रकारों से प्रत्युपस्थान किये जानेपर दास-कर्म-कर पाँच प्रकार से मालिक पर अनुकंपा करते हैं-

(1) (मालिक से) पहिले (विस्तर से) उठ जाने वाले होते है।

(2) पीछे सोने वाले होते हैं।

(3) दिये को (ही) लेने वाले होते है।

(4) कामों को अच्छी तरह करने वाले होते है।

(5) कीर्ति-प्रशंसा फैलानेवाले होते है।

6. साधु-ब्राह्मण की सेवा- "गृहपति पुत्र! पाँच प्रकार से कुल-पुत्र को श्रमण-ब्राह्मण-रूपी ऊपर की दिशा का प्रत्युपस्थान करना चाहिये-

(1) मैत्री-भाव-युक्त कायिक-कर्म से,

(2) मैत्री-भाव-युक्त वाचिक-कर्म से,

(3) मैत्री-भाव-युक्त मानसिक-कर्म से,

(4) (उनके लिये) खुला द्वार रखनेसे,

(5) आमिष (- खान-पान की वस्तु) के प्रदान करनेसे।

गृहपति-पुत्र! इन पाँच प्रकारोसे प्रत्युपस्थान किये गये श्रमण-ब्राह्मण इन छै प्रकारों से कुल-पुत्र पर अनुकंपा करते हैं-

(1) पाप (= बुरा) से निवारण करते हैं।

(2) कल्याण (= भलाई) में प्रवेश कराते है।

(3) कल्याण (-प्रदान) द्वारा इन पर अनुकंपा करते है

(4) अश्रुत (विद्या) को सुनाते है।

(5) श्रुत (विद्या) को दृढ कराते हैं।

(6) स्वर्गका रास्ता बतलाते है।"

माता-पिता पूर्व दिशा है, आचार्य दक्षिण दिशा। पुत्र-स्त्री पश्चिम दिशा है, मित्र अमात्य उत्तर दिशा ॥21॥

दास-कर्मकर नीचे की दिशा है, श्रमण-ब्राह्मण ऊपर की दिशा। गृहस्थ को अपने कुल में इन दिशाओं को अच्छी तरह नमस्कार करना चाहिये ॥22॥

पंडित, सदाचार-परायण स्नेही, प्रतिभावान्, एकान्त-सेवी तथा आत्म-संयमी (पुरुष) यश को पाता है ॥23॥

उद्योगी, निरालस आपत्ति में न डिगने वाला, अटूट नियमवाला, मेघावी (पुरुष) यशको प्राप्त होता है ॥24॥

(मित्रों का) संग्राहक, मित्रों का काम करनेवाला उदार डाह-रहित नेता, विनेता, तथा अनुनेता (पुरुष) यश को पाता है ॥ 25 ॥

जो कि यहाँ दान प्रिय-वचन, अर्थचर्या करता है, और उस उस (व्यक्ति) में योग्यतानुसार समानता का (बर्ताव करता है) ॥ 26 ॥

संसार में यह सग्रह चलते रथ की आणी (= नाभि) की भाँति है। यदि यह संग्रह न हो, तो न माता पुत्र से मान-पूजा पावे, और न ही पिता पुत्रसे ॥ 27 ॥

पंडित लोग इन संग्रहों को चूँकि अच्छी तरह ख्याल रखते है, इसी से वे बड़प्पन पाते है, और प्रशंसनीय होते हैं ॥28 ॥"

ऐसा कहनेपर शृगाल गृहपति पुत्र ने भगवान् से यह कहा- "आश्चर्य! भन्ते!! अद्भुत! भन्ते!!0 ' आज से मुझे भगवान् अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

***

'मानस' में गृहस्थ-आश्रम और भगवत्-प्राप्ति

डॉ. कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव

'शाश्वती गीता', राम की खोज, रामगीता, श्रीगीता आदि 10 पुस्तकों के रचयिता तथा दशाधिक पुस्तकों के सम्पादक। विभिन्न पत्रिकाओं में 250 से अधिक आलेख प्रकाशित। पूर्व न्यूज़ एडिटर, प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया (पी. टी. आई.) , नई दिल्ली।

यह अत्यन्त गौरव का विषय है कि भारत की तीन साहित्यिक कृतियों को यूनेस्को के 'मैमोरी ऑफ़ द वर्ल्ड एशिया-पैसिफ़िक रीजनल रजिस्टर' में जगह मिली है, इनमें एक गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस भी है। सही है कि रामचरितमानस ने अपनी रचनाकाल से भारतीय समाज को जोड़ने का कार्य किया है, जिसका सर्वाधिक प्रभाव भारतीय जनता पर पड़ा है। इस 'मानस' में भी भारतीय गार्हस्थ्य जीवन को बहुत सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम एक गृहस्थ हैं, वे माता, पिता, पत्नी, गुरु, अनुज, वनवासी, वन में रहने वाले मुनि-महात्मा-सबके प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। आदर्श गार्हस्थ्य जीवन एक उदाहरण बन जाता है। लेखक ने रामचरितमानस के आलोक में गार्हस्थ्य-जीवन की श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया है।

मानस में गृहस्थ जीवन का भण्डार भरा पड़ा है। इसमें गृहस्थ जीवन के विभिन्न सोपानों को लेकर कई स्थानों पर दाम्पत्य प्रेम, वात्सल्य प्रेम एवं पारिवारिक प्रेम का आदर्श प्रतिपादित किया गया है। साक्षात् भगवान श्रीराम दाम्पत्य प्रेम की प्रतिमूर्ति हैं तो माँ कौशल्या वात्सल्य की मूर्ति हैं। पारिवारिक प्रेम में लक्ष्मणजी और भरतजी का श्रीराम के प्रति भ्रातृप्रेम, सीताजी का पति प्रेम, जटायु का मित्रप्रेम, हनुमानजी का सेवक स्वामीप्रेम, अयोध्यावासियों का अपने राजा के प्रति प्रेम, सब गृहस्थ जीवन की आदर्श स्थिति का निरूपण करता है। आज जब समाज में तेजी से मूल्यों का क्षरण हो रहा है तो उनकी रक्षा के लिये तुलसीकृत 'मानस' को आधार बनाकर ही इस समाज की रक्षा की जा सकती है।

आमतौर पर मनुष्य के जीवन में चार सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ माने गए हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन्हीं पुरुषार्थों को प्राप्त करने के प्रयास में मनुष्य अपना सारा जीवन संसार को अर्पित कर देता है। इन पुरुषार्थों के लिए चार आश्रम की व्यवस्था की गई है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। आम धारणा यह है कि धर्म से मोक्ष और अर्थ से काम साध्य है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ जीवन में जहाँ एक ओर धर्म, अर्थ और काम का सर्वाधिक महत्त्व है वहीं वानप्रस्थ और संन्यास में धर्म आधारित तप तथा उसके बाद मोक्ष का महत्त्व माना गया है।

सनातन धर्म में जीवन को चार भाग में विभक्त किया गया है। उम्र के प्रथम 25 वर्ष को शरीर, मन और बुद्धि के विकास के लिए निर्धारित किया गया है। इस काल में ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर धर्म, अर्थ और काम की शिक्षा ली जाती है। दूसरा गृहस्थ-आश्रम 50 वर्ष तक की आयु के लिए निर्धारित है। इसमें व्यक्ति पुष्ट शरीर, संकल्पित मन, सुसंस्कृत मनीषा एवं प्रबुद्ध प्रज्ञा लेकर ही गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है। विवाह कर वह सामाजिक कर्तव्य निभाता है। संतानोत्पत्ति कर पितृऋण चुकाता है। यही पितृयज्ञ भी है। यह पाँच महायज्ञों में से एक महत्त्वपूर्ण यज्ञ है। जिसमें धर्म, अर्थ और काम की शिक्षा के बाद विवाह कर पति-पत्नी धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं। परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह करते हैं। इस उम्र के दौरान व्यवसाय या अन्य कार्य को करते हुए धर्म को कायम रखते हैं। धर्म को कायम रखने से ही गृहस्थ जीवन खुशहाल बनता है और जो धर्म को कायम नहीं रखकर उस पर तर्क-वितर्क करता है या उसका मजाक उड़ाता है, तो दुख उसके साथ बना रहता है।

गृहस्थ-आश्रम को अनुभव रूपी शिक्षा का एक चरण भी माना जा सकता है जिसमें व्यक्ति स्पष्ट रूप से सामाजिक या आध्यात्मिक कर्तव्यों को पूरा करने के साथ साथ परिष्कृत सुखों के लिए काम करना करना सीखता है। हालाँकि यह अवस्था पूरी तरह से आनंद की नहीं होती है। इस अवधि के दौरान व्यक्ति को भौतिक मूल्यों और अस्तित्व का कड़ा सामना करना पड़ता है और उस पर काबू भी पाना होता है। यह काल व्यक्ति को व्यावहारिक जीवन में धर्म को कायम रखने के लिए ऊर्जा बचाने की शिक्षा देता है।

गृहस्थाश्रम के भी दो भेद हैं। गृहस्थाश्रम में रहने वाले व्यक्ति 'साधक' और 'उदासीन' कहे जाते हैं। प्रथम वह व्यक्ति जो अपनी गृहस्थी एवं परिवार के भरण-पोषण में लगा रहता है, उसे 'साधक गृहस्थ' कहते हैं और दूसरा वह व्यक्ति जो देवगणों के ऋण, पितृगणों के ऋण तथा ऋषिगण के ऋण से मुक्त होकर निर्लिप्त भाव से अपनी पत्नी के साथ सम्पत्ति का उपभोग करता है, उसे 'उदासीन गृहस्थ' कहते हैं। लेकिन आधुनिकता के नाम पर मनमाने ढंग से चलने वाले समाज में बिखराव की स्थिति होती जा रही है। वेद विरुद्ध कर्म करने वालों के कुल का क्षय हो रहा है। कुल का क्षय होने से समाज में विकृतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। भगवदगीता में अर्जुन ने भगवान से यही कहा है, **"कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः।** (गीता 1.40) कुल के नाश से सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं।

ऐसे समाज का कुछ काल के बाद अस्तित्व गुम हो जाता है। भारत में ऐसे बहुत से समाज हैं जो अब अपना मूल स्वरूप खोकर अन्य धर्म और संस्कृति का हिस्सा बन गए हैं।

ऐसे में रामचरितमानसकी प्रसंगिकता बहुत बढ़ जाती है। 'मानस' में बहुत ही गहराई से स्पष्ट किया गया है कि गृहस्थ-आश्रम के माध्यम से भी बड़ी आसानी से भगवद् प्राप्ति की जा सकती है। कहा गया है कि प्रवृत्ति मार्ग में रहता हुआ व्यक्ति भी संपूर्णता को प्राप्त हो सकता है।

यदि अपवाद स्वरूप कुछ ऋषियों को छोड़ दें तो 'मानस' के सभी पात्र गृहस्थ-आश्रम के माध्यम से ही भगवद् भक्ति को प्राप्त हुए हैं। इनमें सर्व प्रथम वशिष्ठजी का नाम आता है। वह साधक गृहस्थ हैं। वह अपनी पत्नी अरुंधतीजी के साथ ही अयोध्या में निवास करते हैं। वह कुल पुरोहित होने के बावजूद गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इसका प्रमाण है कि जब भरतजी, श्रीरामजी को मनाने के लिए वन जाने का निर्णय किये थे तो वशिष्ठजी अपनी पत्नी अरुंधतीजी के साथ सबसे पहले चलने को तैयार हुए थे।

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ।
रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ॥

(मानस, अयो. 186.3)

अर्थ है सबसे पहले मुनिराज वशिष्ठजी अरुन्धतीजी और अग्निहोत्र की सब सामग्री सहित रथ पर सवार होकर चले। इससे यह स्पष्ट होता है कि वशिष्ठजी गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी भगवद भक्ति को प्राप्त हुए थे।

गृहस्थ जीवन में ही रहकर भक्ति और मुक्ति पा लेने के लिए 'मानस' में राजा जनकजी ख्यात हैं। उनके लिए कहा गया है कि

जोग भोग महँ राखेउ गोई।
राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥

(मानस, बाल. 16.1)

राजा जनकजी ने योग और भोग दोनों को श्रीराम प्रेम में छिपा रखा था, लेकिन श्रीराम को देखते ही वह प्रकट हो गया। इससे यह स्पष्ट है कि राजा जनक जी गृहस्थ जीवन ही व्यतीत कर रहे थे और इसी गृहस्थ जीवन से ही उन्होंने अपना उद्धार करने में सफ़लता हासिल कर लिया। यही बात भगवान ने गीता में कही है,

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः॥

(गीता, 3.20)

जनक आदि ज्ञानी जन भी आसक्ति रहित कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे। 'मानस' में भी इसी बात की पुष्टि की गई है।

इसके बाद 'मानस' में श्रीभरतजी का नाम आता है। वह तो गृहस्थ जीवन के साक्षात प्रमाण हैं। उनकी पत्नी माण्डवी हैं, उनका विवाह उसी मंडप में ही हुआ था जिसमें रामजी का विवाह हुआ था।

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु
ब्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला
कुअँरि लईं हँकारि कै॥

(मानस, बाल. 324, छंद 2)

तब वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर जनकजी ने विवाह का सामान सजाकर मांडवीजी, श्रुतकीर्तिजी, और उर्मिलाजी- इन तीनों राजकुमारियों को बुला लिया। श्रीमद्भागवत में तो भरतजी के पुत्रों का भी उल्लेख मिलता है। उनके दो पुत्र हुए। एक का नाम तक्ष और दूसरे का पुष्कल।

तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते।

(भागवत, 9.11.12)

लेकिन सब प्रकार से गृहस्थ जीवन का निर्वाह करते हुए भी वह उदासीन गृहस्थ ही रहे और उन्हें ईश्वर की भक्ति और प्राप्ति दोनों हुई। उन्होंने भगवद् प्रेम की पराकाष्ठा कर दी थी। भगवान की वन यात्रा के दौरान गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी वह सन्यासियों के भी कठोरतम नियम को मात दे रहे थे। वह 14 वर्षों के दौरान गोमूत्र में पकाया हुआ जौ का दलिया खाते थे और वल्कल पहनते थे तथा जमीन पर कुश बिछाकर सोते थे।

गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम्।

(भागवत 9.10.34)।

भरतजी में नीति, सरलता, पवित्रता और निर्मलता के साथ पवित्र प्रेम और विशुद्ध भक्ति की धारा बहती है। भरतजी जैसा भाई अब तक न तो पैदा हुआ हैं और न आगे होगा।

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई।
भयउ न भुअन भरत सम भाई॥

(मानस, 258.2)

इसके पीछे भरतजी का संकल्प और पूर्ण समर्पण की भावना थी।

'मानस' में भगवान श्रीराम ने स्वयं एक गृहस्थ जीवन का निर्वाह करते हुए तमाम झंझावतों का

सामना किया था। लेकिन उन्होंने गृहस्थ जीवन का कभी परित्याग नहीं किया। तमाम कष्टों का सामना करने के पश्चात वन से लौटने पर उन्होंने सीताजी के साथ ही अपना राज्याभिषेक करवाया था। इससे साबित होता है कि वह गृहस्थ जीवन का ही पूरी निष्ठा के साथ पालन करने वाले थे।

जनकसुता समेत रघुराई।
पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥

(मानस, उत्तर. 11.2)

श्रीजानकीजी के सहित श्रीरघुनाथजी को देखकर मुनियों का समुदाय अत्यंत ही हर्षित हुआ। उनके लिए कहा गया,

एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः।
स्व धर्मं, गृहमेधीयम् शिक्षयन् स्वयमाचरत्॥

(भागवत 9.11.55)

भगवान श्रीराम ने एक पत्नी व्रत धारण कर रखा था। उनके चरित्र अत्यंत पवित्र एवं राजर्षियों के से थे। वे गृहस्थोचित स्वधर्म की शिक्षा देने के लिए स्वयं उस धर्म का आचरण करते थे।

गृहस्थ जीवन की सबसे ऊँची पदवी में हमेशा माँ ही विराजित रहती हैं और इसी मातृत्व धारक शक्ति के लिये 'मानस' में कहा गया है,

पुत्रवती जुबती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुत होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी।
राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

(मानस अयो. 74.1)

संसार में वही स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र श्रीरघुनाथजी का भक्त हो। नहीं तो राम विमुख पुत्र से जो अपना हित जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी। भगवान श्रीराम बहुत ही सावधानी से तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में अपने गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते हुए अपनी तीनों माताओं का पूरा-पूरा सम्मान और चिंता करते हैं और साथ में सीताजी भी तीनों सासुओं की एक समान सेवा करती हैं।

कौसल्यादि सासु गृह माहीं।
सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं॥

(मानस उत्तर. 23.4)

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि गृहस्थ जीवन के माध्यम से भी मनुष्य प्रयास करने पर भगवद् भक्ति और मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

***

मनु-वचन

गार्हस्थ्य जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्तु तत्राश्रमे वसन्॥

स्त्रियों के रजोदर्शन से आरम्भिक चार रात्रि, 11वीं तथा 13वीं रात्रि निन्दनीय हैं। इनके अतिरिक्त दोनों चतुर्दशी, दोनों अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा और संक्रांति तथा सूर्य-चन्द्र का ग्रहण इन आठ वर्जित रात्रियों को छोड़कर पत्नी समागम करता है तो वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारी ही है।

मनुस्मृति : 3.50.

संस्कृत का महत्त्व : सनातन धर्म के सन्दर्भ में

डॉ. रवीन्द्र कुमार भारतीय

पद्मश्री और सरदार पटेल राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित डॉ. भारतीय शिक्षाशास्त्री एवं मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ (उत्तर प्रदेश) के पूर्व कुलपति हैं।

संस्कृत भाषा का ज्ञान सनातन धर्म के ज्ञान के लिए आवश्यक है। इसके ज्ञान के विना अनुवादों के माध्यम से प्राचीन ग्रन्थों की दुर्व्याख्या के कारण बहुत खामियाजा हम भुगत चुके हैं। अतः आज आवश्यकता है कि ग्रन्थों को हम मूल रूप से पढ़े तथा किसी खास एजेंडा से ऊपर उठकर उनका अवगाहन करें। संस्कृत भाषा हिन्दी, सिन्धी, बांग्ला, मराठी, पंजाबी, गुजराती, उड़िया, असमिया आदि सहित अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओं के साथ ही नेपाली भाषा की भी जननी है तथा जिसका अन्य भारतीय भाषाओं —मलयालम, तेलुगु, तमिल तथा कन्नड़ पर गहन एवं कई एशियाई-यूरोपीय भाषाओं पर भी, न्यूनाधिक, प्रभाव है। लेखक का मन्तव्य है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थ अहिंसा, सहिष्णुता तथा परस्पर संबन्ध के आधार पर हमें एकसूत्र में बाँधने के लिए सही दिशा दिखाता है। इसी दृष्टि से हमें श्रीमद्भगवद्गीता का भी अध्ययन करना चाहिए।

वैदिक धर्म, वास्तव में, सनातन धर्म है। शब्दार्थ और स्वयं में निहित मूल भावना, दोनों के दृष्टिकोण से शाश्वत, अर्थात् सदा स्थापित व्यवस्था —बिना प्रारम्भ के तथा अन्त-रहित एवं सदैव प्रवहमान नियम ही सनातन धर्म है। सनातन धर्म, चर-अचर एवं दृश्य-अदृश्यमान ब्रह्माण्ड —जगत् के एक ही व्यवस्थापक, नियंत्रक और संचालक —ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा, प्रभु आदि असंख्य नामों से सम्बोधित एकमात्र शाश्वत सत्ता (जो परमसत्य है एवं एक ही सार्वभौमिक तथा निरन्तर प्रवहमान नियम द्वारा दृश्य-अदृश्य व चल-अचल ब्रह्माण्ड का स्वयं सञ्चालन भी करती है) के निमित्त (अथवा उसी पर निर्भर) सार्वभौमिक एकता की वास्तविकता को समर्पित है।

सनातन धर्म, शाश्वत परिवर्तन नियम की सत्यता को अंगीकार कर सर्वकल्याण के उद्देश्य से अनुकूल परिस्थितियों का अपने परम कर्त्तव्य के रूप में निर्माण करने एवं अस्तित्व की प्रत्याभूति, प्रगति और लक्ष्य-प्राप्ति हेतु अपरिहार्य बृहद् सजातीय सहयोग व सामंजस्य हेतु अहिंसा को, इसकी दो सर्वोत्कृष्ट तथा

डॉ0 कुमार गौतम बुद्ध, जगद्गुरु आदि शंकराचार्य, गुरु गोबिन्द सिंह, स्वामी दयानन्द 'सरस्वती', स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी और सरदार वल्लभभाई पटेल सहित महानतम भारतीयों, लगभग सभी राष्ट्रनिर्माताओं एवं अनेक वीरांगनाओं के जीवन, कार्यों-विचारों, तथा भारतीय संस्कृति, सभ्यता, मूल्य-शिक्षा और इंडोलॉजी से सम्बन्धित विषयों पर एक सौ से भीअधिक ग्रन्थों के लेखक/सम्पादक हैं। विश्व के समस्त महाद्वीपों के लगभग एक सौ विश्वविद्यालयों में सौहार्द और समन्वय को समर्पित भारतीय संस्कृति, जीवन-मार्ग, उच्च मानवीय-मूल्यों तथा युवा-वर्ग से जुड़े विषयों पर पाँच सौ से भी अधिक व्याख्यान दे चुके हैं; लगभग एक हजार की संख्या में देश-विदेश की अनेक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में एकता, बन्धुत्व, समन्वय-सौहार्द और सार्थक-शिक्षा पर लेख लिखकर कीर्तिमान स्थापित कर चुके हैं। भारतीय विद्याभवन, मुम्बई से प्रकाशित होने वाले भवन्स जर्नल में ही गत बीस वर्षों की समयावधि में डॉ0 कुमार ने एक सौ पचास से भी अधिक अति उत्कृष्ट लेख उक्त वर्णित क्षेत्रों में लिखकर इतिहास रचा है। विश्व के अनेक देशों में अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस के अवसर पर शान्ति-यात्राओं को नेतृत्व प्रदान करके तथा पिछले पैंतीस वर्षों की समयावधि में राष्ट्रीय एकता, विशिष्ट भारतीय राष्ट्रवाद, शिक्षा, शान्ति और विकास, सनातन मूल्यों, सार्वजनिक जीवन में नैतिकता और सदाचार एवं भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध विषयों पर निरन्तर राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ-कार्यशालाएँ आयोजित कर स्वस्थ और प्रगतिशील समाज-निर्माण हेतु अभूतपूर्व योगदान दिया है। डॉ0 रवीन्द्र कुमार शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में अपने अभूतपूर्व योगदान की मान्यतास्वरूप 'बुद्धरत्न' जैसे अन्तर्राष्ट्रीय तथा 'भारत गौरव', 'सरदार पटेल राष्ट्रीय सम्मान', 'साहित्यवाचस्पति', 'साहित्यश्री', 'साहित्य सुधा', 'हिन्दी भाषा भूषण' एवं 'पद्म श्री' जैसे राष्ट्रीय सम्मानों से भी अलंकृत हैं।

व्यावहारिक अभिव्यक्तियों सहिष्णुता और सहनशीलता के साथ, दैनिक गतिविधियों और परस्पर सम्बन्धों का आधार बनाने का मानव का आह्वान करता है।

सम्पूर्ण एकता –अविभाज्य समग्रता की सत्यता और एक ही सार्वभौमिक सत्ता ब्रह्म की वास्तविकता के प्रकटकर्ता वेद –ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, सनातन धर्म के आदिकालीन व आधारभूत ग्रन्थ हैं, मूल व्याख्याता हैं।

वेद, विश्व की प्राचीनतम तथा अत्यन्त ही परिमार्जित एवं वैज्ञानिक व्याकरण की धनी संस्कृत भाषा में, (जो हिन्दी, सिन्धी, बांग्ला, मराठी, पंजाबी, गुजराती, उड़िया, असमिया आदि सहित अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओं के साथ ही नेपाली भाषा की भी जननी है तथा जिसका अन्य भारतीय भाषाओं –मलयालम, तेलुगु, तमिल तथा कन्नड़ पर गहन एवं कई एशियाई-यूरोपीय भाषाओं पर भी, न्यूनाधिक, प्रभाव है), रचित हैं।

अन्य लगभग सभी आधारभूत वैदिक धर्म ग्रन्थ भी संस्कृत भाषा में ही रचित हैं। संस्कृत में ही रचित उपनिषद् वैदिक वाङ्मय के अभिन्न भाग हैं। अर्थात्, वेदों के भाग हैं और वे, इसीलिए, वेदान्त भी कहलाते हैं। वेदों की मूल भावना के अनुसार ही ब्रह्म – परमात्मा, सार्वभौमिकता, आत्मा, अध्यात्म आदि सहित समस्त मूल मानवीय विषयों से सम्बन्धित ग्राह्य परम ज्ञान अद्वितीय गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से उपनिषदों द्वारा निरूपित है। प्रमुखतः वेदों और उनके अभिन्न भाग उपनिषदों द्वारा व्याख्यायित और प्रसारित होने के कारण ही सनातन धर्म को वैदिक धर्म भी कहा जाता है।

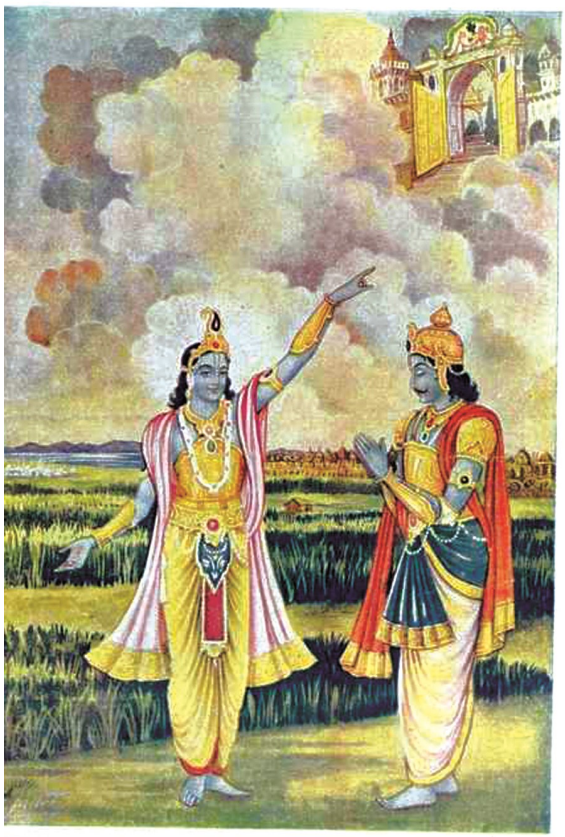

चूँकि वैदिक धर्म के मूल—आधारभूत ग्रन्थ संस्कृत में हैं; अन्य प्रमुख ग्रन्थ— स्मृतियाँ, संहिताएँ, वेदांग, पुराण, आरण्यक सहित ब्रह्म, जीव और जगत-ज्ञान के व्याख्याता उपनिषद् आदि भी इसी भाषा (वैदिक और लौकिक संस्कृत) में हैं, संस्कृत भाषा में प्रकट वैदिक मंत्रों और इसी में रचित अन्य ग्रन्थों के श्लोकों के माध्यम से वैदिक धर्म के मूल सिद्धान्तों की विवेचना-व्याख्या हुई है, इसलिए वैदिक धर्म और संस्कृत एक-दूसरे से घनिष्ठतः सम्बद्ध हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता, वेदों में प्रकट सार्वभौमिकता और ब्रह्मवाद तथा उपनिषदों के अध्यात्म —ग्राह्य परम ज्ञान को अपने में समाहित करती है। तदनुसार, मानव का उसकी जीवन सार्थकता के परमोद्देश्य से मार्गदर्शन करती है। इस प्रकार, श्रीमद्भगवद्गीता स्वयं सनातन — वैदिक धर्म के एक मूल, अति प्रभावशाली एवं अनुकरणीय ग्रन्थ के रूप में उभरती है।

वैदिक धर्म की मूल भावना को, स्वयं धर्म की श्रेष्ठतम व्याख्या करते हुए और धर्म को मानव-कर्त्तव्य के रूप में प्रतिष्ठापित करते हुए, प्रस्तुत करती है। जगत -स्वरूप के सम्बन्ध में अश्वत्थ विद्या, ब्रह्म के सन्दर्भ में अव्ययपुरुष विद्या, परा प्रकृति-जीव के विषय में अक्षरपुरुष विद्या, अपरा प्रकृति-भौतिक जगत के सम्बन्ध में क्षरपुरुष विद्या का सूक्ष्मता, स्पष्टता तथा निष्पक्षता से विश्लेषण, एवं साथ ही, योगशास्त्र, 'कर्मयोग' —"योगः कर्मसु कौशलम्" द्वारा मानवतावाद के प्रकटकर्ता पवित्र और ग्राह्य सन्देश श्रीमद्भगवद्गीता को अध्यात्म क्षेत्र की एक अद्वितीय और शीर्षस्थ कृति के रूप में स्थापित करता है।

"योगः कर्मसु कौशलम्" का वासुदेव श्रीकृष्ण का आह्वान प्रत्येक मनुष्य के लिए है। श्रीमद्भगवद्गीता किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना प्रत्येक मानव का तदनुसार मार्गदर्शन करते हुए संशयों, द्वन्द्व और असमंजस की स्थिति से बाहर निकालकर उसे सुकर्मों की ओर अग्रसर करती है।

श्रीमद्भगवद्गीता (18 अध्यायों में 700 श्लोकों को समाहितकर्ता व मूल रूप से महाभारत के भीष्मपर्व के भाग से निर्गत ग्रन्थ) वेदों एवं उपनिषदों की ही भाँति मूलतः संस्कृत भाषा में स्थापित एक ऐसा अति उत्कृष्ट ग्रन्थ है, जिसने सैंकड़ों वर्षों से भारत ही नहीं, अपितु विश्वभर के विद्वानों, चिन्तकों और मानवतावादियों के विचारों और कार्यों को गहराईपूर्वक प्रभावित किया है।

लौकिक संस्कृत में रचित श्लोक श्रीमद्भगवद्गीता की एक अति उत्कृष्ट विशेषता है। इसने सैंकड़ों वर्षों से देश-विदेश के परम विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। परिणामस्वरूप, इसके मूल संस्कृत पाठ का विश्वभर की पचास से भी अधिक

भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

प्राचीन से आधुनिककाल तक के अनेकानेक ऋषितुल्य भारतीय सन्तों-चिन्तकों, विशेषकर आदि शंकराचार्य (जीवनकाल: 788-820 ईसवीं), रामानुजाचार्य (जीवनकाल: 1017-1137 ईसवीं), मध्वाचार्य (जीवनकाल: 1238-1317 ईसवीं; एक अन्य मतानुसार 1199-1278 ईसवीं), वल्लभाचार्य (जीवनकाल: 1479–1531 ईसवीं), ज्ञानेश्वर (जीवनकाल: 1275-1296 ईसवीं), बाल गंगाधर तिलक, अरविन्द घोष, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, परमहंस योगानन्द (जीवनकाल: 1893-1952 ईसवीं) व भक्ति वेदान्त प्रभुपाद (जीवनकाल: 1896-1977 ईसवीं) के साथ ही सेनार्ट (जीवनकाल: 1847-1928 ईसवीं), जी0 थिबॉट (जीवनकाल: 1848-1914 ईसवीं), एडगर्टन (जीवनकाल: 1885-1963 ईसवीं), हरमन/हेरमान कार्ल हेस/हेस्से (जीवनकाल: 1877-1962 ईसवीं) एवं थिओडोर (जन्म 1959 ईसवीं में) जैसे अग्रिम पंक्ति के विदेशी विद्वानों ने भी इस पर, इसमें प्रमुखता से उभरे विषय को केन्द्र में रखते हुए, भाष्य-टीकाएँ लिखीं।

वैदिक धर्म के मूल सिद्धान्तों के साथ ही, विशेष रूप से श्रीमद्भगवद्गीता में प्रकट निष्कामकर्मयोग –स्वाभाविक कर्मों में संलग्न रहते हुए और ब्रह्माण्ड के स्वामी –जगतपति परमेश्वराधीन रहकर ही निःश्रेयस प्राप्ति –जीवन सार्थकता का सिद्धान्त, जैसा कि हम सभी जानते हैं, इनमें सर्वप्रमुख रहा है। इस रूप में श्रीमद्भगवद्गीता, निस्सन्देह, विश्वभर के गिने-चुने धर्म ग्रन्थों में से एक है। इस ग्रन्थ की समानता करने वाला कोई और धर्म ग्रन्थ, कदाचित्, पूरे विश्व में नहीं है। परमात्मा के अनादि, सर्वमूल –तेज, बुद्धि, शक्ति और सत्य के स्रोत एवं जगत कारक होने की वास्तविकता को प्रकट करते श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय सात के तीन (6, 7 तथा 10) अति मूल्यवान और लोकप्रिय श्लोकों का उल्लेख यहाँ प्रासंगिक होगा:

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥
मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्॥

संक्षेप में, सार्वभौमिक एकता, सर्वसमानता और सत्य की पराकाष्ठा (निरन्तर प्रवहमान सार्वभौमिक नियम रूप) सर्वशक्तिमान परमेश्वर –ब्रह्म सहित, वैदिक धर्म के मूल सिद्धान्तों की अतिश्रेष्ठ व्याख्या व तत्वज्ञान का लौकिक संस्कृत –सुसंस्कृत काव्यशैली में वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता की विलक्षणता है। इसी के साथ श्रीमद्भगवद्गीता वैदिक धर्म और संस्कृत भाषा की घनिष्ठता का एक बेजोड़ एवं अतिश्रेष्ठ उदाहरण भी है।

***

तिरुक्कुरल् का वचन
(संस्कृत अनुवाद)

गृहस्थ जीवन

यतीन् मृतान् दरिद्रांश्च निर्गतीन् अतिथीनपि।
गृहस्थोऽन्नादिदानेन स्वाश्रितानपि रक्षति॥42॥

संन्यासियों, मृत पूर्वजों, दरिद्रों असहायों तथा अतिथियों के साथ अपने आश्रितों को अन्न आदि दान करता है वह गृहस्थ है।

-धर्मकाण्ड, अधिकार 5, पद 42

जानकी जन्मोत्सव के दो प्राचीन गीत

आधुनिक काल में वैशाख शुक्ल नवमी के दिन जानकी-जन्मोत्सव मनाया जाता है। यह परम्परा भी कम से कम विगत शती से आ रही है। दरभंगा राजपरिवार में महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह तथा रमेश्वर सिंह के चाचा श्रीमान् गोपीश्वर सिंह थे। उन्होंने दोनों भाइयों को पारिवारिक परम्परा की शिक्षा दी थी, जो कोर्ट ऑफ वाड्र्स के अंतर्गत सम्भव नहीं था। अपने बड़े भाई गुणेश्वर सिंह के साथ इन्होंने भी दोनों भाइयों के अभिभावक होने की भूमिका निभाई थी। उन्होंने विभिन्न अवसरों पर गाने के लिए गीतों की रचना की जिनका गायन राज दरबार में होता था।

जानकी नवमी के दिन गाने के लिए उन्होंने इन दो गीतों की रचना की थी-

वैशाखे, शुक्लनवम्यां श्रीजानकीजन्मोत्सवः

(रागिनी काफी।)

मिथिलापुर मंगल लषु घर घर।
मूल प्रकृति मिथिलेश सुता है भई प्रगट आनन्द चराचर॥
माधव धवल ललित नवमी तिथि लै समाज सँ जनक नृपतिवर।
देत दान भूसुर अगनित धन मनहु दान जल बह्यी सुभगसर॥
वन्दी नट भट द्वार प्राय मिलि मुदित परस्पर धुनि जयजय कर।
दियो नृपति गज तुरग सवनिको वसन विचित्र मालमुक्तागर॥
सजे नगर तोरन पताक ध्वज ललित वितान देखु जन मनहर।
'गोपिईश' बरसत कुसुमाबलि तहँ विधि सुर सुरसरित शीशधर॥28॥1॥

(राग बहार)

मिथिलेश सदन अवतार लिये ।
लघु आदिशक्ति निमिवंश चन्द्रिका मनुज अमर मुनि मगन किये॥
जय धुनि करत विविध कुसुमाबलि वरसावत सुरमुदित हिये।
सेवक पद कर कमल छत्र लै अभय छाँह 'गोपीश' दिये॥29॥२॥

***

‘मानस’ में आदर्श गृहस्थ जीवन

डॉ. राजेन्द्र राज

स्वतंत्र पत्रकार एवं पूर्व प्राचार्य, जनता कॉलेज, सूर्यगढ़ा पुरानी बाजार, सूर्यपुरा, पोस्ट और थाना-सूर्यगढ़ा, जि. लखीसराय (बिहार)

सनातन धर्म लोककल्याण का धर्म है। इसका लक्ष्य है कि जैविक तथा अजैविक वातावरण के साथ तालमेल बैठाकर हम कल्याण के पथ पर आगे बढ़े जिससे हमें सुख और शान्ति मिले। हम गाय को भी माता कहते हैं तो जलप्रवाह रूप नदी को भी माता कहते हैं। हमारी भूमि भी हमारी माता है। गार्हस्थ्य जीवन इन सबके प्रति हमारे दायित्वों की याद दिलाता है। इस आलोक में गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस का अध्ययन रोचक है। समष्टि में व्यष्टि को स्थापित कर लोककल्याण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए मानस में अनेक स्थल आये हैं। अतः आज आवश्यकता है कि पाश्चात्त्य जगत् का अंधानुकरण छोड़कर हमें अपने अतीत को देखना चाहिए तथा जो रास्ते हमारे पूर्वजों के द्वारा दिखाए गये हैं उन्हें पिर से अपने जावन में लाना चाहिए।

भारतीय जीवन दर्शन के निर्धारित चार आश्रमों- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ में वैसे तो प्रत्येक का महत्त्व है, लेकिन आज के युग में भ्रूण-हत्या, विघटित होते संयुक्त पारिवारिक जीवन, हिंसा, दहेज की लोलुपता और कृत्रिम वैवाहिक प्रदर्शन के बीच प्रातःस्मरणीय सन्त-शिरोमणि तुलसीदास के अमर ग्रन्थ ‘रामचरितमानस’ का अवलोकन करना अनिवार्य है, जहाँ जीवन की हर समस्या का समाधान मिलता है। हमने अपने शास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन कम कर दिया है, इसलिए परिवार से लेकर समाज और विश्व की स्थितियों में विद्रूपताएँ देखने को मिल रही हैं। गृहस्थाश्रम अर्थात् पारिवारिक जीवन समाज तथा राष्ट्र की उन्नति निर्भर करती है। धर्म, अर्थ और काम का इस जीवन में उचित रूप से सेवन होता है। ब्रह्मचर्य के बाद मनुष्य अपने गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करता है और अपने आध्यात्मिक लक्ष्य की खोज करता है।अपने पारिवारिक दायित्वों को कर्म की प्रधानता के साथ पूरा करता है।

ऋग्वेद के 10.181.2 में कहा गया है-

सं गच्छध्वम् सं वदध्वम्॥

अर्थात् साथ चलें मिलकर बोलें। उसी सनातन मार्ग का अनुसरण करो जिस पर पूर्वज चले हैं।

इसी सहगमन के क्रम में हमारे चारों ओर संबंधों का एक आवरण बनता है,जो हमरे जीवन का सुख

तथा शान्ति प्रदान करते है। हमें यदि प्रवास के काल में सहायता के लिए विद्या सीखने की आवश्यकता होती है तो घर में रहने के लिए पत्नी की भी आवश्यकता है। नीति कहती है-

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।

प्रवास में विद्या मित्र घर की मित्र पत्नी, बीमारों का मित्र औषधि तथा मृत्यु के बाद धर्म ही मित्र है।

इसलिए उपनिषदों में गार्हस्थ्य जीवन को सफल बनाने के लिए ऋषियो ने ईश्वर से असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरता की ओर ले चलने की प्रार्थना की थी। हमें इस यात्रा में शरीर की स्वस्थता चाहिए, क्योंकि इसके बिना धर्म की साधना हो नहीं सकती। हम शरीर को साधना के मार्ग के एख सहायक के रूप में लेते रहे हैं। तभी तो कविकुलगुरु कालिदास ने कुमारसम्भव में कहा है-

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

शरीर ही सभी धर्मों को पूरा करने का साधन है।

आज अगर हम अथर्ववेद के 3.30 .3 के श्लोक को आत्मसात् कर लें तो संयुक्त परिवार में रहकर शांतिमय जीवन जी सकते हैं। भाइयो और बहनों के बीच द्वेष न हो, परस्पर आदर-सम्मान और मिल-जुल कर कर्मों को करें। एकमत से प्रत्येक कार्य को करें भद्रभाव से संभाषण करें-

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥2॥

हमारे पारिवारिक जीवन में कोई व्यक्ति आलसी होते हैं। एक राष्ट्र के जीवन में आलस का जीवाणु पंगु बना देता है। कहा गया है-

अलसस्य कुतो विद्या अविद्यस्य कुतो धनम्।
अधनस्य कुतो मित्रम् अमित्रस्य कुतः सुखम्॥

अर्थात् आलसी को विद्या मूर्ख को धन, निर्धन को मित्र एवं अमित्र को सुख नहीं मिल सकता। गृहस्थ जीवन में आलस घुन के समान होता है।

इन कसौटियों के आधार पर हम 'रामचरितमानस' में वर्णित राजा दशरथ और जनक के परिवार को देखते हैं तो वे संपूर्ण विश्व को आदर्श पारिवारिक जीवन का मार्ग-दर्शन करते हैं। आज जो मानवता निष्प्राण हो रही है, क्लेषों से परिपूर्ण परिवार हो गया है तो उसमें प्राण फूंका जा सकता है। वहीं आततायी रावण का परिवार लंका में है। हालांकि वहां विभीषण, मंदोदरी और त्रिजटा, सुलोचना जैसे आदर्श पात्र हैं जो परिवार को विनाश से बचाने के लिए भगवान राम से वैर मोल नहीं लेने की सलाह देते हैं,क्यों कि मनुष्य के अवतार के रूप में भगवान राम विष्णु के अवतार हैं। वे ब्रह्मांड के नायक हैं।

चक्रवर्ती राजा दशरथ का परिवार धन-धान्य और पुत्र से संपन्न है।एकता है। पारिवारिक एकता की भावना के साथ सभी के सुख-दुख में भागीदारी है। जब विश्वामित्र उनसे दानवों व दुष्टों के विनाश तथा वन में ऋषि-मुनियों की सुरक्षा के लिए भगवान राम की मांग करते हैं तो गृहस्थ जीवन के मोहवश वे कहते हैं-

सब सुत मोहि प्रान की नाई।
राम देत नहिं बनई गोसाई॥

भगवान राम अपने पिता के वचन का निर्वाह करते हैं और विश्वामित्र के साथ वन जाने को तैयार हो जाते हैं। पुत्र स्नेह की पराकाष्ठा के बीच राजा दशरथ जब राम को वन-गमन का आदेश देते हैं तो वे विचलित नहीं होकर सहर्ष आज्ञा का पालन करते हैं-

धन्य जनम जगती तल तासू।
पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताके।
प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके॥

ऐसी पितृ-भक्ति का उदाहरण विश्व में कहीं नहीं मिलता। पुत्र-प्रेम के कारण ही उन्होंने प्राण त्यागे।

आज के समाज के लिए यह त्याग अनुकरणीय है। उन्हें तीन महारानियाँ -कौशल्या, कैकेयी व सुमित्रा है। ये तीनों महारानियाँ सगी बहनों के समान एक-दूसरे से स्नेह रखती हैं तथा तीनों अपने पुत्रों की अपेक्षा दूसरों के पुत्रों से स्नेह रखती हैं। कैकेयी भरत से ज्यादा श्रीराम को प्यार करती हैं उनके राज्याभिषेक का समाचार सुन कर कंठहार मंथरा को देने के लिए देती हैं। मंथरा की कुटिलता के कारण उसके हृदय में विकार उत्पन्न हो जाता है।

सीता और लक्ष्मण श्रीराम के साथ ही वन जाते हैं। उन्हें राजभवन का वैभव आकर्षित नहीं कर पाता। भरत को राजगद्दी मिलती है,लेकिन शील-गुण से संपन्न वे नन्दी ग्राम में एकांत का जीवन जीते हैं। उर्मिला अपने पति लक्ष्मण के वियोग को चौदह वर्षों तक हृदय पर पत्थर रख कर झेलती हैं। जगत जननी सीता वन में पति के साथ अनेक कष्टों को झेलती हैं-

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।
तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी॥

सीता रावण के अत्याचारों से मुक्त होने पर अग्नि प्रवेश कर प्रतिष्ठा की रक्षा करती हे। उन्हें निर्वासित किया जाता, लेकिन पति व परिवार के प्रति कोई क्लेश नहीं। सीता के निर्वासन के बाद भगवान राम पुनः विवाह नहीं करते। राजसूय यज्ञ में सीता की स्वर्ण-मूर्ति की स्थापना की जाती है। भरत का चरित्र अपने आप में आदर्श और त्याग से भरा है और राम राज्य की नींव इनके ही त्याग पर पड़ी है। सुमित्रा माता ने लक्ष्मण जी के भगवान राम के साथ वन जाने का आदेश दिया था-

जो पै सीय रामु बन जाहीं।
अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥

सुशील स्वभाव वाले शत्रुघ्न ननिहाल से लौटने पर मंथरा की दुदर्शा की थी-

लगे घसीटन धरि झोंटी।

राजा जनक अपनी ज्ञान शक्ति के बल पर संसार में रह कर भी विदेह हें। अपने पारिवारिक जीवन की संपूर्ण मर्यादा का पालन करते हें। वे माता जानकी को सभी पुत्रियों से ज्यादा मानते है। स्वयंवर में जब धनुष-भंग नहीं हो रहा था तो उन्होंने व्यथित हो कर कहा था-

अब जनि कोऊ माखे भट मानी।
वीर विहीन मही मैं जानी॥

जनक के विदेह होने के बाद भी उनका पारिवारिक जीवन प्रेम से भरा हुआ था।

रावण प्रतापी राजा है और कुंभकरण तथा मेघनाद से स्नेह रखता है। कुंभकरण उसे सीता माता के अयोध्या लाने पर कहता है- 'कि जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्याण' कहता रहता है। उसने विभीषण के प्रभु राम की शरण में जाने पर प्रशंसा करता है-

धन्य धन्य तैं धन्य विभीषण।
भयऊ तात निसिचर कुल भूषन॥

यह रावण का मंदोदरी के प्रति स्नेह ही था जो उसकी बात पर सीता कावध नहीं करता था। सुलोचना ने अपने पति के कटे हुए सिर से बातचीत कर के प्रभु राम के सामने अपनी तेजस्विता का परिचय दिया था।

परिवारिक जीवन को सुखमय, आनंदमय और शांतिमय बनाने के लिए हमें 'मानस' के इन आदर्श चरित्रों का अनुकरण करना चाहिए। समाजशास्त्रीय रूप में परिवारों का समष्टि रूप ही समाज है तथा जीवन की प्रथम पाठशाला है परिवार के शान्तिमय और सुरक्षित वातावरण में रह कर ही कोई मनुष्य अपने गृहस्थ जीवन की नैया को पार कर सकता है।

***

वीर माता सुमित्रा

डॉ. नरेन्द्रकुमार मेहता
'मानसश्री', 'मानस' शिरोमणि, विद्यावाचस्पति एवं विद्यासागर
सीनि. एमआईजी-103, व्यास नगर, ऋषिनगर विस्तार,
उज्जैन (म.प्र.), 456010

रामकथा के प्रत्येक पात्र अपनी अपनी जगह आदर्श भूमिका का निर्वाह करते हैं। माहाराज दशरथ की तीनों रानियों में सबसे छोटी मगध के महाराज प्राप्तिज्ञ पुत्री और लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न की माता रानी सुमित्रा आदर्श की प्रतिमूर्ति हैं। यह बात भिन्न है कि रानी कौशल्या तथा कैकेयी की भाँति उनका चरित व्यापक रूप से विवेचित नहीं हो सका है। गौरव का विषय है कि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में उनके भी चरित को गूढ़ रूप से गुम्पित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। माता सुमित्रा ममतामर्यी हैं। वनवासगमन के समय जब लक्ष्मण भी वन जाने की प्रतिज्ञा करते हैं तो वाल्मीकि के शब्दों में माता सुमित्रा लक्ष्मण को उपदेश देती हैं कि वन में राम को राजा दशरथ के समान मानना, सीता को मेरे समान मानना और वन को अयोध्या के समान पानना- इन तीनों उपदेशों का पालन करते हुए तुम्हें जहाँ जाना हो जाओ - रामं दशरथं विद्धि इत्यादि वाक्य सुमित्रा की उक्ति है। ऐसी ममतामयी तथा त्यागशीलवती सुमित्रा का चरित यहाँ मानस के आधार पर लिखा गया है।

एक बार भूपति मन माहीं।
भै गलानि मोरे सुत नाहीं।
गुर गृह गयउ तुरत महिपाला।
चरन लागि करि बिनय बिसाला॥

रामचरितमानस, बालकाण्ड 189.1

एक बार राजा दशरथजी के मन में बड़ी ग्लानि हुई कि मेरे पुत्र नहीं हैं। राजा तुरन्त ही गुरु वसिष्ठजी के घर गए और चरणों में प्रणाम कर बहुत विनय की।

राजा दशरथजी ने अपना सारा दुःख-सुख गुरुजी को सुनाया। गुरु वसिष्ठजी ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया और कहा धैर्य धारण करो, तुम्हारे चार पुत्र होंगे जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध और भक्तों के भय को हरने वाले होंगे। मुनि वसिष्ठजी ने श्रृंगी ऋषि को बुलवाया और उनसे शुभ पुत्रकामेष्टि यज्ञ सम्पन्न करवाया। श्रृंगी ऋषि के यज्ञ से अग्निदेव हाथ में चरु (खीर हविष्यान्न) लिए प्रकट हुए।

तब महर्षि वशिष्ठजी ने कहा- 'हे राजन्! तुम जाकर हविष्यान्न (पायस) को जिस रानी को जैसा उचित हो वैसा भाग बनाकर बाँट दो।'

उसी समय राजा ने अपनी पत्नियों को बुलाया। कौसल्या आदि सब रानियाँ वहाँ चली आईं। राजा ने पायस का आधा भाग कौसल्या को दिया और शेष आधे के दो भाग किए। वह उनमें से एक भाग राजा ने कैकेयी को दिया, शेष जो बच रहा उसके दो भाग हुए और राजा ने उनको कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर

रख कर अर्थात् उनकी अनुमति से और इस प्रकार उनका मन प्रसन्न करके सुमित्रा को दिया।

दीनों पर दया करने वाले कौसल्या के हितकारी कृपालु प्रभु का जन्म हुआ।

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ।
सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ॥
वह सुख संपति समय समाजा।
कहि न सकइ सारद अहिराजा॥

रामचरितमानस, बालकाण्ड 195-1

कैकेयी और सुमित्रा- इन दोनों ने भी सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया। उस सुख सम्पत्ति, समय और समाज का वर्णन सरस्वती और सर्पों के राजा शेषजी भी नहीं कर सकते।

नामकरण-संस्कार का समय जानकर दशरथजी ने ज्ञानी मुनि वसिष्ठजी को बुला भेजा। मुनि वसिष्ठजी ने कहा- हे राजन्! इनके अनुपम नाम हैं फिर भी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा-

जो आनंद सिंधु सुखरासी।
सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुखधाम राम अस नामा।
अखिल लोक दायक बिश्रामा॥

रामचरितमानस, बालकाण्ड 197-3

ये जो आनन्द के समुद्र और सुख की राशि है जिस (आनन्द सिन्धु) के एक कण से तीनों लोक सुखी होते हैं, उन (आपके सबसे बड़े पुत्र) का नाम श्राम्य है जो सुख का भवन और सम्पूर्ण लोकों को शान्ति देने वाला है।

विस्व भरन पोषण कर जोई।
ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन ते रिपु नासा।
नाम सत्रुघ्न बेद प्रकासा॥

रामचरितमानस, बालकाण्ड, 197.4

जो संसार का भरण-पोषण करते हैं, उन (आपके दूसरे पुत्र) का नाम श्भरत्य होगा। जिनके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है उनका वेदों में प्रसिद्ध श्शत्रुघ्न्य नाम है।

लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत अधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥

रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा सं. 197

जो शुभ लक्षणों के धाम, श्रीरामजी के प्यारे और सारे जगत के आधार है गुरु वसिष्ठजी ने उनका नाम श्लक्ष्मण्य ऐसा श्रेष्ठ नाम रखा।

राजा दशरथजी की तीन रानियों में सुमित्राजी का चरित्र सबसे अधिक रोचक है क्योंकि वह 'मानस' में अल्पभाषी मृदुभाषी है तथा दूसरी तरफ उनसे वार्तालाप करने वाले पात्र भी बहुत कम है। अल्पभाषी

पात्र सुमित्राजी हैं किन्तु वह सूर्यवंश के राजपरिवार की प्रतिष्ठित, स्वाभिमानी और अनेक गुणों से सम्पन्न प्रतिष्ठित नारी भी है। सुमित्राजी का राजा दशरथ से भी वार्तालाप बहुत कम ही पाया गया है। सुमित्राजी दुःख-सुख, हानि-लाभ, संयोग-वियोग और विनोद-विषाद सबको समान समान दृष्टि से देखती है। समता की यही श्रेष्ठ भावना सुमित्राजी को स्वार्थ से एकदम दूर रखती है और सबके साथ सौहार्द-मित्रता के सूत्र में बाँधती है। सुमित्राजी ने अपने जीवन में कोई इच्छा प्रकट नहीं की और न कोई महत्त्वाकांक्षा।

लक्ष्मण को वन में विदा करते समय सुमित्राजी का मुँह 'मानस' में प्रथम बार खुलता दिखाई देता है। इसके पूर्व उन्हें बोलने के अनेक अवसर थे, पर वह हर परिस्थिति में मौन रही। माता सुमित्राजी का प्रथम वार्तालाप श्रीराम के वनगमन के समय पुत्र लक्ष्मण के साथ बड़ा रोचक, शिक्षाप्रद तथा अनुकरणीय है। लक्ष्मणजी ने श्रीरामजी के साथ वन जाने के लिए बड़ा हठ करके अंत में श्रीरामजी को राजी कर लिया किन्तु श्रीराम तो बड़े अनुशासनप्रिय थे अतः लक्ष्मण से कहा कि तुम अपनी माता से मेरे साथ वन चलने की अनुमति प्राप्त कर लो।

मागहु बिदा मातु सन जाई।
आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी।
भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥

रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड 73-1

श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- हे भाई! जाकर माता से विदा माँग आओ और शीघ्र वन को चलो। रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम की वाणी सुनकर लक्ष्मणजी आनन्दित हो गए। बड़ी हानि दूर हो गई और बड़ा लाभ हुआ। लक्ष्मणजी बड़े ही उदास मन से माता सुमित्राजी के पास गए और वनगमन की कथा विस्तार से उन्हें सुनाई। लक्ष्मणजी मन ही मन सोच रहे थे कि हे विधाता! माता वन जाने का कहेंगी या नहीं। कैकेयी पर दशरथजी के प्रेम से सुमित्राजी ने अपना सिर धुना तथा अपना कुसमय जानकर भी धैर्य नहीं खोया। बड़े ही प्रेम से उन्होंने लक्ष्मण से कहा-

तात तुम्हारी मातु बैदेही।
पिता रामु सब भाँति सनेही॥

रामचरितमानसअयोध्याकाण्ड 74.1

हे तात! जानकीजी तुम्हारी माता है और सब प्रकार से स्नेह करने वाले श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं।

एक आदर्श माता के रूप में सुमित्राजी ने लक्ष्मण को अल्प शब्दों में जो शिक्षा दी, वह प्रत्येक माता के लिए अनुकरणीय है।

गुर पितु मातु बंधु सुर साई।
सेइअहिं सकल प्रान की नाई॥

रामु प्रानप्रिय जीवन जी के।
स्वारथ रहित रखा सबही के॥

रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड 74-3

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। फिर श्रीराम तो प्राणों के भी प्रिय हैं, हृदय के भी जीवन हैं और सभी के स्वार्थ रहित सखा है। हे तात! हृदय में ऐसा जानकर उनके साथ वन को जाओ और जगत् में जीने का लाभ प्राप्त करो।

लक्ष्मण को माता सुमित्रा द्वारा वचन और कर्म से श्रीसीतारामजी की सेवा करने का उपदेश अत्यन्त ही अनुपम है। वे कहती हैं कि संसार में वही युवती, स्त्री पुत्रवती हैं जिसका पुत्र श्रीरामजी का भक्त हो। नहीं तो जो श्रीराम से विमुख पुत्र से अपना हित जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी। पशु की भाँति उसका ब्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है।

तुम्हरेंह भाग रामु बन जाहीं।
दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहु।
राम सीय पद सहज सनेहू॥

रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड 75-2

सुमित्राजी लक्ष्मण से कहती हैं कि तुम्हारे ही भाग्य से श्रीराम वन को जा रहे हैं। हे तात (पुत्र)! दूसरा और कोई कारण नहीं है। पापियों का भार पृथ्वी पर और भूमि का भार शेषनाग पर है, लक्ष्मण शेषावतार होने के कारण उन्हीं के सिर पर भार है, उसी के उतारने को राम वन में जा रहे हैं, इसलिए तुम्हारे भाग्य खुल गए हैं अथवा तुम वन में उनकी अच्छी भलीभाँति सेवा कर सकोगे इसलिए तुम्हारा बड़ा भाग्य है। सब पुण्यों का यही बड़ा फल है, जो सीताराम के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो।

तदनन्तर सुमित्राजी लक्ष्मण को शिक्षा देती हुई कहती हैं- राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह इनके वश स्वप्न में भी मत होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग करके मन, वचन और कर्म से श्रीसीतारामजी की सेवा करना। तुमको वन में सब प्रकार से आराम है, जिसके साथ श्रीरामजी और श्रीसीताजी रूप माता-पिता हैं। हे पुत्र! तुम वही करना, जिससे श्रीरामजी वन में क्लेश न पावे। यही मेरा उपदेश है। हे तात! मेरा यही उपदेश है जिससे वन में तुम्हारे कारण श्रीरामजी और श्रीसीताजी सुख प्राप्त करें और पिता, माता प्रिय परिवार तथा नगर के सुखों की याद भूल जाएं।

तुलसीदासजी कहते हैं कि सुमित्राजी ने इस प्रकार हमारे प्रभु लक्ष्मणजी को शिक्षा देकर वन जाने की आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि श्रीसीताजी और श्री रघुनाथजी के चरणों में तुम्हारा निर्मल एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित नया हो। वह माता सुमित्राजी की सीख-उपदेश, लक्ष्मणजी सुनकर उनके चरणों में सिर नवाकर तुरन्त वहाँ से चल दिए।

तदनन्तर कौसल्या एवं सुमित्रा से चित्रकूट में सीताजी की माता श्रीसुनयना मिलती है तब सुमित्रा ने कहा-

सुनि ससोच कह देवि सुमित्रा।
बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी।
बालकेलि सम बिधि मति भोरी॥

रामचरितमानस, बालकाण्ड 282.1

देवी सुमित्राजी शोक के साथ कहने लगी- विधाता की चाल बड़ी ही विपरीत और विचित्र है, जो सृष्टि को उत्पन्न करके पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। विधाता की बुद्धि बालकों के खेल के समान भोली (विवेक शून्य) है।

चित्रकूट में सुनयनाजी कौसल्या, सुमित्रा से मिलने आती है कौसल्याजी ने उनके समक्ष श्रीराम को वन से लौटने हेतु कई विकल्प रखती है- जैसे लक्ष्मण को घर (अयोध्या) रख लिया जाएँ और भरत वन जाएँ।

लाखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी।
सब भइ मगन करुन रस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि।
सिथिल सनेहँ सिद्ध जोगी मुनि॥
सब रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ।
तब धरि धीर सुमित्राँ कहेऊ॥
देबि दंड जुग जामिनी बीती।
राम मातु सुनि उठि सप्रीती॥

रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड , 284-3, 4

कौसल्याजी का स्वभाव देखकर और उनकी सरल और उत्तम वाणी को सुनकर सब रानियाँ करुणरस में निमग्न हो गईं। आकाश से पुष्प वर्षा की झड़ी लग गई और धन्य-धन्य की ध्वनि होने लगी। सिद्ध योगी और मुनि स्नेह से शिथिल हो गए।

सारा रनिवास देखकर थकित रह गया अर्थात निस्तब्ध हो गया तब सुमित्राजी ने धीरज धर के कहा कि हे देवि! दो घड़ी रात बीत गई है। यह सुनकर श्रीरामजी की माता कौसल्याजी प्रेमपूर्वक उठीं। अयोध्याकाण्ड में सुमित्राजी का यह अंतिम वार्तालाप है।

मानस में उत्तरकाण्ड में श्रीराम के लंका से रावण के वध उपरान्त अयोध्या लौटने पर उनकी श्रीराम से मिलने का वर्णन अत्यन्त ही अद्भुत है।

भेटेउ तनय सुमित्रा राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकइ हृदयं बहुत समुचानि॥
लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोमु न जाइ॥

रामचरितमानस, 6 (क), 6 (ख)

सुमित्राजी अपने पुत्र लक्ष्मणजी की श्रीरामजी के चरणों में प्रीति जानकर उनसे मिलीं। श्रीरामजी से मिलते समय कैकेयीजी हृदय में बहुत सकुचाईं। लक्ष्मणजी भी सब माताओं से मिलकर ओर आशीर्वाद पाकर हर्षित हुए। वे कैकेयी से बार-बार मिले परन्तु उनके मन का क्षोभ (रोष) नहीं जाता।

यही 'मानस' में सुमित्राजी के अन्तिम संवाद का वर्णन है। इस प्रकार 'मानस' में सुमित्राजी अल्पवर्णित और मृदुभाषिणी माता के रूप में वर्णित है।

***

तिरुक्कुरल् का वचन

(संस्कृत अनुवाद)

गृहस्थ जीवन

कारयित्वा परैर्धर्मे धर्ममार्गावलम्बिनः। जीवनं च गृहस्थस्य श्लाघ्यते यतिजीवनात्॥ ४८॥
स एव धर्मशब्दार्थो यद्धि गार्हस्थ्यजीवनम्। गृहस्थधर्म एवात्र धर्मशब्देन कथ्यते॥४९॥
धर्ममार्गमनुल्लङ्घ्य गृहस्थो यदि जीवति। देववत्पूजितः सोऽत्र देवलोकं ततो व्रजेत्॥ ५०॥

-धर्मकाण्ड, अधिकार 5, पद 48-50

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार

(अप्रैल-मई, 2024ई.)

अन्तर्राष्ट्रीय नर्स दिवस पर नर्सों को सम्मानित किया गया

महावीर वात्सल्य अस्पताल में पूर्व संध्या पर कार्यक्रम का आयोजन किया

12 मई को अंतर्राष्ट्रीय नर्स दिवस है। इसकी पूर्व संध्या पर शनिवार को महावीर वात्सल्य अस्पताल में कार्यक्रम का आयोजन किया गया। मुख्य सभागार में आयोजित कार्यक्रम में महावीर वात्सल्य अस्पताल के विभिन्न विभागों में कार्यरत 8 नर्सिंग स्टाफ को सम्मानित किया गया। अस्पताल के निदेशक समेत वरीय चिकित्सकों ने उत्कृष्ट सेवा के लिए नर्सों को सम्मानित किया। इस अवसर पर महावीर वात्सल्य अस्पताल के निदेशक डॉ. एन पी सिंह ने कहा कि नर्सिंग स्टाफ अस्पताल की आत्मा होती हैं। नर्सिंग स्टाफ के बगैर किसी अस्पताल की कल्पना भी नहीं की जा सकती। महावीर वात्सल्य अस्पताल के मुख्य समन्वयक डॉ. प्रभात कुमार ने अपने संबोधन में कहा कि नर्सिंग स्टाफ अस्पताल की रीढ़ होते हैं। मरीजों की पूरी देखभाल उन्हीं के जिम्मे होता है। वरीय शिशु रोग विशेषज्ञ डॉ बिनय रंजन ने कहा कि कोरोना काल में नर्सिंग स्टाफ ने मरीजों की उत्कृष्ट सेवा की। उस दौरान डॉ.क्टर से ज्यादा नर्सिंग स्टाफ ने योगदान दिया। वरीय शिशु रोग विशेषज्ञ डॉ विवेक पांडेय ने कहा कि भर्ती मरीजों के इलाज के क्रम में डॉ.क्टरों के परामर्श का अनुपालन नर्सिंग स्टाफ के जिम्मे होता है। कौन सी दवा कब और कैसे दी जानी है, मरीज को कब-क्या खाना है वगैरह सबकुछ नर्सिंग स्टाफ की देखरेख में होता है। इस अवसर पर महावीर वात्सल्य अस्पताल के डॉ. रणदीप, डॉ. अमित, डॉ. राकेश कुमार, डॉ. अतुल, डॉ. मुकेश, डॉ. प्रखर, चीफ मेट्रॉन सरोजनी, सिस्टर ओमना आदि मौजूद रहे।

इन्हें सम्मानित किया गया-

अंतर्राष्ट्रीय नर्स दिवस की पूर्व संध्या पर शनिवार को आयोजित कार्यक्रम में महावीर वात्सल्य अस्पताल की आठ नर्स को सम्मानित किया गया। उन्हें अस्पताल के निदेशक डॉ. एन पी सिंह और मुख्य समन्वयक डॉ. प्रभात कुमार ने प्रतीक चिह्न भेंट कर सम्मानित किया। सम्मानित होनेवाली नर्सिंग स्टाफ में जूलियट रानी, संजिता लाकड़ा, भानुप्रिया, डॉ. ली, रंजना बेसरा, प्रियंका, इंदुलता और सोनी कुमारी शामिल हैं।

महावीर हार्ट हॉस्पीटल में मरीज के दोनों वाल्व के साथ मुख्य धमनी भी बदली गयी

28 साल के युवक का दुर्लभ ऑपरेशन, काम करने लगा हार्ट

महावीर मन्दिर न्यास द्वारा संचालित महावीर हार्ट हॉस्पीटल में दुर्लभ ऑपरेशन हुआ है। वैशाली जिले के 28 साल के वकील कुमार के हार्ट के दो वाल्व के साथ-साथ मुख्य धमनी भी बदल दी गई है। महावीर हार्ट हॉस्पीटल के डॉ. कुणाल कृष्ण की टीम ने 8 घंटे की लंबी और जटिल सर्जरी कर युवक की जान बचायी। डॉ. कुणाल ने बताया कि दो वाल्व के साथ हार्ट से निकलनेवाली धमनी बदलने का ऑपरेशन रेयर है। बिहार में इस तरह के ऑपरेशन का कोई मामला अब तक सामने नहीं आया है। डॉ. कुणाल कृष्ण ने बताया कि दो वाल्व के साथ मुख्य धमनी बदलने के ऑपरेशन के दौरान मरीज के शरीर में रक्त का प्रवाह पूरी तरह बाधित हो जाता है। ऐसे में मरीज के किडनी-लिवर फेल होने और लकवा मारने का खतरा रहता है। डॉ. कुणाल ने बताया कि ऑपरेशन के दौरान वैकल्पिक रूप में हार्ट-लंग मशीन से मरीज के शरीर में रक्त का प्रवाह बरकरार रखा गया। ऑपरेशन द्वारा मरीज के दोनों वाल्व के साथ सिंथेटिक ग्राफ्ट के रूप में कृत्रिम धमनी भी लगायी गयी। मरीज के हृदय की धमनी में दरार के कारण उससे ब्लीडिंग हो रही थी। धमनी के फटने का खतरा था। ऐसी स्थिति में मरीज की जान जा सकती थी। डॉ. कुणाल ने बताया कि हृदय के दो वाल्व और मुख्य धमनी को एक साथ बदलना चिकित्सा जगत में रेयर है। इस मरीज के हार्ट का एक वाल्व पूर्व में रिपेयर भी हुआ था। उस लिहाज से यह ऑपरेशन बहुत चुनौतीपूर्ण था। सफल ऑपरेशन के बाद मरीज का हार्ट ठीक से काम कर रहा है। उसे एक-दो दिनों में अस्पताल से छुट्टी दे दी जाएगी। महावीर हार्ट हॉस्पीटल में इतनी जटिल हार्ट सर्जरी मुख्यमंत्री चिकित्सा कोष से निःशुल्क की गयी। इस दुर्लभ ऑपरेशन की टीम में कार्डियक सर्जन डॉ. कुणाल कृष्ण के साथ डॉ. गजनफर, डॉ. रजनीश, डॉ. एल कुमार, स्वरूप दत्ता, रवि श्रीवास्तव, अनिमेष, गणेश, विश्वजीत शामिल थे। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने इतनी जटिल हार्ट सर्जरी को सफलतापूर्वक अंजाम देने के लिए महावीर हार्ट हॉस्पीटल के डॉक्टरों की टीम को बधाई दी है।

जानकी माता के प्राकट्य दिवस पर महावीर मन्दिर में विशेष पूजन

जानकी सहस्रनाम का पाठ, मिथिला की भजन मंडली द्वारा संकीर्तन

महावीर मन्दिर में जनकसुता जगतजननी जानकी माता का प्राकट्य उत्सव पूरे विधि-विधान और भक्तिभाव से मनाया गया। शुक्रवार को जानकी नवमी के अवसर पर महावीर मन्दिर में दशकों से चली आ रही परंपरा के अनुसार पूजन और संकीर्तन का आयोजन किया गया। सुबह पौने नौ बजे महावीर मन्दिर की पत्रिका धर्मायण के संपादक और संस्कृत के विद्वान पंडित भवनाथ झा के निर्देशन में संकल्प के साथ पूजन प्रारंभ हुआ। महावीर मन्दिर के पुरोहित पंडित सौरभ पांडेय यजमान के रूप में थे। पंडित गजानन जोशी ने पूजन में सहयोग किया। इस अवसर पर महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल भी उपस्थित रहे। महावीर मन्दिर के दक्षिण-पूर्व कोण पर स्थित जानकी जी की प्रतिमा के समक्ष प्रामाणिक जानकी पूजन पद्धति से पूजन हुआ। लगभग डेढ़ घंटे चले विशिष्ट पूजन के बाद जानकी सहस्रनाम का पाठ किया गया। फिर हवन हुआ। आखिर में माता जानकी जी की आरती हुई। इसके बाद महावीर मन्दिर में उपस्थित भक्तों के बीच हलवा प्रसाद का वितरण किया गया।

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।.....

महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि वैशाख शुक्ल नवमी को माता जानकी का प्राकट्य दिवस माना जाता है। राजा जनक की पुत्री होने के कारण उन्हें जनकसुता भी कहा जाता है। रामचरितमानस के बालकांड में गोस्वामी तुलसीदास जी ने जानकी माता की स्तुति में एक चौपाई लिखी है। महावीर मन्दिर में जानकी नवमी के पूजन के बाद मिथिला की भजन मंडली ने इसी चौपाई का गायन कर पूरे दिन संकीर्तन किया। यह चौपाई है-'जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।ताके जुग पद कमल मनावउं। जासु कृपा निरमल मति पावउं।। इसका भावार्थ है -'राजा जनक की पुत्री, जगत की माता और करुणानिधान श्री रामचन्द्र जी की प्रियतमा जानकी जी के दोनों चरण कमल को मैं मनाता हूँ जिनकी कृपा से मैं निर्मल मति पा सकूं। ' आचार्य किशोर कुणाल ने कहा कि जानकी माता त्याग की प्रतिमूर्ति हैं। उनकी कृपा से भक्तों की सभी मनोकामना पूर्ण होती है।

बाईस दिन के बच्चे के हृदय में दो स्टेंट लगा बचायी जान

महावीर हार्ट हॉस्पीटल में शिशु की पीडीए स्टेंटिग

महावीर मन्दिर न्यास द्वारा संचालित महावीर हार्ट हॉस्पीटल में डॉ.क्टरों ने 22 दिन के बच्चे के हार्ट में दो स्टेंट लगाकर उसकी जान बचायी। बिहार के शेखपुरा जिले के रियांश के हृदय में बड़ा छेद था। उसके फेफड़े का वाल्व

सिकुड़ा हुआ था। महावीर हार्ट हॉस्पीटल के बाल हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ प्रभात कुमार ने बताया कि बच्चे का सांस तेज चल रहा था। उसका हाथ-पैर नीला पड़ रहा था। महावीर हार्ट हॉस्पीटल में इको जांच में हृदय में बड़ा छेद पाया गया। फेफड़े का वाल्व सिकुड़ा होने से हृदय में रक्त का प्रवाह बाधित हो गया था। इमरजेन्सी हालात में बच्चे को महावीर हार्ट हॉस्पीटल में भर्ती किया गया। डॉ. प्रभात कुमार के साथ डॉ. आशीष गोलवारा, डॉ. नासर अब्दाली और डॉ. विवेक पांडेय की टीम ने दूरबीन विधि से पीडीए स्टेंटिग कर हृदय में रक्त प्रवाह सुचारू किया। इसके बाद बच्चे का ऑक्सीजन लेबल सामान्य हो गया। सोमवार को ठीक होने के बाद रियांश को अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। डॉ. प्रभात कुमार ने बताया कि एक महीने से कम उम्र के बच्चे की स्टेंटिग की सुविधा देश के चुनिंदा अस्पतालों में ही है। वरीय बाल हृदय रोग विशेषज्ञ ने बताया कि टेढ़ा-मेढ़ा डक्टस होने के कारण दो स्टेंट लगाना पड़ा। इससे पूर्व महावीर हार्ट हॉस्पीटल में एक महीने से कम उम्र के दो-तीन बच्चे की सिंगल स्टेंटिग सफलतापूर्वक की गयी है। अस्पताल में इतने छोटे शिशु के डबल स्टेंटिग यानी दो स्टेंट लगाने का यह पहला मामला है। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने शिशु की डबल स्टेंटिग कर जान बचाने के लिए महावीर हार्ट हॉस्पीटल के डॉक्टरों की टीम को बधाई दी है।

बुद्ध पूर्णिमा को महावीर मन्दिर में पूजा-अर्चना

बुद्ध पूर्णिमा के अवसर पर महावीर मन्दिर में विशेष पूजा अर्चना की गयी। महावीर मन्दिर के दक्षिणी भाग में स्थित भगवान बुद्ध की प्रतिमा के समक्ष उनकी स्तुति, पूजन और आरती हुई। महावीर मन्दिर के पुरोहित पंडित सौरभ पांडेय ने पूजन संपन्न कराया। संध्या काल में यह पूजन कार्यक्रम हुआ। इस अवसर पर बड़ी संख्या में श्रद्धालु भी महावीर मन्दिर में उपस्थित थे। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि भगवान बुद्ध की जन्म तिथि वैशाख पूर्णिमा मानी जाती है। भगवान् बुद्ध के जन्म की तिथि के कारण इस पूर्णिमा को बुद्ध पूर्णिमा के नाम से जाना जाता है। बुद्ध पूर्णिमा के दिन महावीर मन्दिर में प्रत्येक वर्ष विशेष पूजा अर्चना की जाती है। इस बार बुद्ध पूर्णिमा और गुरुवार के सुयोग में भगवान् बुद्ध का पूजन-अर्चन हुआ। सनातन धर्म में गौतम बुद्ध को भगवान विष्णु का अवतार माना जाता है।

व्रत-पर्व

(वैशाख, 2081 वि. सं. 24अप्रैल-23 मई, 2024ई.)

पं. मुक्ति कुमार झा, ज्यौतिष परामर्शदाता, महावीर ज्योतिष मण्डप, महावीर मन्दिर, पटना

1. वरूथिनी एकादशी व्रत, वैशाख कृष्ण एकादशी, 4 मई, 2024ई. (सबके लिए)

अगले दिन कुश के जल से पारणा होगी।

2. वल्लभाचार्य जयन्ती, वैशाख कृष्ण एकादशी, 4 मई, 2023ई.

वैशाख कृष्ण एकादशी। भक्तिकालीन सगुणधारा की कृष्णभक्ति शाखा के स्तंभ एवं पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक वल्लभाचार्य का जन्म विक्रम संवत् 1535 अर्थात् 1479 ई. में हुआ था। मध्यकालीन हिन्दी के कवियों में सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास आदि इन्ही की परम्परा में हुए।

3. अक्षय तृतीया, परशुराम जयन्ती, वैशाख शुक्ल तृतीया, 10 मई, 2024 ई.

मान्यता के अनुसार इसी दिन त्रेता युग का आरम्भ हुआ था। इस दिन किये गये दान को अक्षय फल वाला माना जाता है।

4. गणेश चतुर्थी, 11 मई, 2024 ई.

5. आदिशंकराचार्य जयन्ती, वैशाख शुक्ल पंचमी, 12 मई, 2024 ई.

मठाम्नाय की तिथिगणना के अनुसार आदि शंकराचार्य की 2531वीं जयन्ती है।

6. रामानुजाचार्य जयन्ती, वैशाख शुक्ल पंचमी, 12 मई, 2024 ई.

वैशाख शुक्ल पंचमी। इस वर्ष रामानुजाचार्य की 1006ठी जयन्ती होगी।

7. जह्नुसप्तमी, जाह्नवी सप्तमी, वैशाख शुक्ल सप्तमी, 14 मई, 2024 ई.

8. जानकी नवमी, वैशाख शुक्ल नवमी, दिनांक 17 मई, 2024 ई.

9. विजया एकादशी, वैशाख शुक्ल एकादशी, दिनांक 19 मई, 2024ई. (सबके लिए)

10. नरसिंह चतुर्दशी, वैशाख शुक्ल चतुर्दशी, 21 मई, 2024ई.

इस दिन भगवान् विष्णु के दशावतारों में नरसिंहावतार हुआ था।

11. बुद्ध-जयन्ती एवं कूर्म-जयन्ती, वैशाख पूर्णिमा, 23 मई, 2024ई.

इसी दिन बुद्ध की 2646 जयन्ती तथा कूर्म-जयन्ती मनायी जाती है।

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य– 'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय' इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तगण को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजी के गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यानिश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।

(गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

जानकी-नवमी एवं बुद्ध-जयन्ती के अवसर पर मन्दिर में देवार्चन

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

महावीर मन्दिर में स्थापित बुद्धावतार की प्रतिमा

श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए महावीर मन्दिर, पटना- 800001 से ई-पत्रिका के रूप में https://mahavirmandirpatna-org/dharmayan/ पर निःशुल्क वितरित। सम्पादक : भवनाथ झा।